प्रवेशांक वर्ष :1 अंक :1 (त्रैमासिक)

हिमांतर

हिमालयी सरोकारों के लिए समर्पित

पहाड़ जिनसे आबाद

गाँव-गोठ्यार | खेती-बाड़ी | पर्यटन | संस्कृति | पर्यावरण | संस्मरण | यात्राएं | आधी आबादी | कविताएं | कहानियां

(त्रैमासिक)

हिमांतर

हिमालयी सरोकारों के लिए समर्पित

ई-पत्रिका

पढ़ने के लिए Visit करें

www.himantar.com

ई-पत्रिका
हिमांतर
हिमालयी सरोकारों के लिए समर्पित
वर्ष :1 अंक :1 (त्रैमासिक)

प्रवेशांक

संपादकीय 5
- उखेल-पाखेल — डॉ. प्रकाश उप्रेती

यादों की गठरी 6-19
- बेटा तेरी माँ नहीं रही... — डॉ. अरुण कुकसाल
- आब कब आलै ईजा... — डॉ. रेखा उप्रेती
- माँ से वो पहली मुलाकात — श्रीमती नीता कुकरेती
- आमा का लोक और लोक की आमा — डॉ. गिरिजा किशोर पाठक
- इजुली (कुमाउनी कविता) — भास्कर भौर्याल
- पहाड़ की पहरू ईजा — ललित फुलारा

मेरे हिस्से और किस्से का पहाड़ 20-21
- ओ परी तू... — डॉ. प्रकाश उप्रेती

पानी बिन सब सून 22-25
- उत्तराखंड हिमालय के जलस्रोतों ... — डॉ. मोहन चन्द तिवारी
- मैं पहाड़ की स्त्री (कविता) — डॉ. स्नेह लता नेगी

बच्चों के शब्द रंग 27
- मेरी माँ — रतन राणा
- हे माँ त्वेन मैं किलै मार्यूं — लक्ष्मी राणा
- महिला दिवस अर पहाड़ की नारी — शिवानी राणा

काव्यात्मक अभिव्यक्ति 26-30
- माँ — अंजना जुयाल
- ईजा — कृष्ण तिवारी
- माँ! — अनिता मैठाणी
- माँ अनंत आकाश सी — ममता गैरोला
- बुई (रवांल्टी कविता) — दिनेश रावत
- ईजा — सोनू उप्रेती 'साँची'
- पहाड़ की औरत — डॉ. कुसुम जोशी
- ईजा और पहाड़ — मीना पाण्डेय

आपकी पाती 31
- ईजा के बिना सूना घर — विवेक जोशी

संपादक : डॉ. मनमोहन सिंह रावत

कार्यकारी संपादक : डॉ. प्रकाश उप्रेती

संपादन सहयोग : ललित फुलारा
: भावना मासीवाल
: अंकिता रासुरी

प्रबंध निदेशक : सीमा रावत

संपादकीय सलाहकार
आचार्य सुरेश उनियाल
जे.पी. मैठाणी
महाबीर रवांल्टा
डॉ. विजया सती
एम. हिमानी जोशी
डॉ. कुसुम जोशी
डॉ. गिरिजा पाठक
डॉ. रेखा उप्रेती
विवेक जोशी
नीलम पांडेय 'नील'
दिनेश रावत
अर्जुन सिंह रावत
ध्यान सिंह रावत 'ध्यानी'

वेब डिजाइनर : महेन्द्र नेगी

आवरण पृष्ठ पेंटिंग
भास्कर भौर्याल

मार्केटिंग प्रबंधक
सुनील लोहानी
नरेश नौटियाल

कार्यालय
ई-107, एसीई एसपायर, नोएडा एक्सटेंशन, उत्तर प्रदेश

देहरादून कार्यालय
फेस-3, यमुनोत्री एनक्लेव, सेंवलाकला, देहरादून (उत्तराखंड)

himantar9@gmail.com
www.himantar.com
Himantar
Himantar9
@Himantar1
+91-8860999449

उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं. हिमांतर में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं, इससे संपादक एवं संपादक मंडल की सहमति/असहमति अनिवार्य नहीं है. रचना की मौलिकता संबंधी किसी भी प्रकार के विवाद एवं चुनौती हेतु लेखक स्वयं उत्तरदायी होगा. रचना चयन का अंतिम अधिकार संपादक एवं संपादन समिति के पास सुरक्षित है. हिमांतर से संबंधित किसी भी प्रकार के विवाद का न्यायिक स्थल देहरादून होगा.

विनम्र श्रद्धांजलि

यह वर्ष कई तरह की विपदाओं के साथ शुरू हुआ. कोविड–19 जैसे संक्रमण ने पूरी दुनिया को बदल दिया. इस संक्रमण ने दुनिया को शोकाकुल कर दिया. लोगों के जीवन से लेकर जीविका तक पर इसका गहरा असर पड़ा है. लाखों लोग इस बीमारी के कारण जान गँवा चुके हैं. इसी बीच पहाड़ की संस्कृति के दो अग्रणी पुरोधाओं का चला जाना, पहाड़ के गीत–संगीत और बोली के लिए अपूरणीय क्षति है. लोक धुन के दोनों साधकों, हीरा सिंह राणा और जीत सिंह नेगी को हम विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं. हमारी आस्था है कि कलाकार कभी मरते नहीं हैं. उनकी कला वर्षों–वर्ष तक हम सबको समृद्ध करती रहती है. इन दोनों कलाकारों के स्वर और शब्द पहाड़ की असल पहचान हैं जो वर्षों तक हम सबकी स्मृतियों में रचे–बसे रहेंगे.

हिमांतर
हिमालयी सरोकारों के लिए समर्पित

उखेल-पाखेल

यह दौर 'कहन' और 'लिखत' का है. 'गुनने' और 'पढने' की कला दिनों-दिन कम होती जा रही है. इस कम होने में लिखा और कहा बहुत ज्यादा जा रहा है. खासकर सोशल मीडिया और कोविड-19 के दौर ने शब्दों की एक नई दुनिया रच दी है. इसमें शब्द अर्थ से ज्यादा आघात दे रहे हैं. लाइव की हर खिड़की के साथ साहित्य की कई विधाएँ खारिज हो रही हैं. स्व-घोषित हंस पत्रिका के बड़े संपादक तो कहन के इस आवेश में प्रेमचंद की कहानियों को भी 'कूड़ा' कह गए. उनके कहन के बाद तो 'थ्री वर्ड स्टोरी' जैसा जलजला आ गया. कई पुराने और नए लेखकों ने अपनी बंजर फेसबुक दीवार को इसी से उर्वर किया. हर कोई लिखने और कहने को आतुर दिखाई दे रहा है. इस आतुरता ने शब्दों के मर्म की हत्या कर दी है. यह हत्या अब सामूहिकता में बदल गई है. रामचंद्र शुक्ल ने जब यह सोचा कि ''ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नये-नये आवरण चढ़ते जायँगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा'' तब उनको भी नहीं पता था कि कवि-कर्म कठिन नहीं बल्कि वर्चुअल दुनिया में सबसे आसान काम होगा.

साहित्य में यह समय उपाधि देने और लेने का भी है. एक तरह से आप इस समय को अभिनन्दन काल के तौर पर भी देख सकते हैं. रातों- रात फेसबुक के कॉमेंट से युवा आलोचक और जाने-माने पत्रकार पैदा हो जा रहे हैं तो वहीं गुरु जी एक वेबिनार के बाद लब्धप्रतिष्ठित व अलाने-फलाने विषयों के जानकार हो जा रहे हैं. सब कुछ इतनी जल्दी में हो रहा है कि आप जब तक समझने की कोशिश करते हैं तब तक एक और आ जाता है. अब तो विषयों से ज्यादा उसके जानकार हो गए हैं. विषय कम पड़ते जा रहे हैं और जानकार बढ़ते जा रहे हैं. इस बढ़त में बाकायदा एक गिरोह अलग-अलग स्तरों पर काम करता है. इसको मैं, 'मोशन-प्रमोशन' गिरोह कहता हूँ. आपको यह हर क्षेत्र में दिखाई देगा. इसी का नतीजा है कि कभी कोई किसी को हमारे समय का 'गिर्दा' की उपाधि दे रहा है तो वहीं कुल जमा साढ़े सात कविताओं के बाद कोई हिमपुत्र हो जाता है. इस तरह आए दिन उपाधियाँ थोक के भाव बांटी जा रही हैं. नए लोग न तो आ पा रहे हैं न उनको आने दिया जा रहा है. जैसे ही कोई नया आता है तो सब उस पर टूट पड़ते हैं. वह कुछ लिखने से पहले खारिज और बहिष्कृत कर दिया जाता है. इसलिए यह समय रचने से ज्यादा रगड़ने का है.

हर किसी को अवसर भी मिल रहा है. कहन और लिखत दोनों के स्तरों पर. तभी तो हर रोज नई-नई पत्रिकाएँ, ब्लॉग, वेबसाइट, पेज, किताबें, पोर्टल 'लोकार्पित' हो रहे हैं. ये लोकार्पित शब्द भी पांच लोगों से बना है. पांच का लोक, पाँच को ही अर्पित रहता है. ऐसे समय में हम स्वयं एक पत्रिका क्यों ला रहे हैं. यह सब जानते-समझते हुए भी 'हिमांतर' पत्रिका क्यों? यह सवाल जितना मेरे ज़हन में है उतना ही आपके भी होगा. इसलिए कुछ बातें पत्रिका के संदर्भ में कहनी जरुरी हैं. इस कहन से हम कोई क्रांति या 'न भूतो, न भविष्यति' का दावा नहीं करने वाले हैं. इस पत्रिका का एकमात्र उद्देश्य है कि पहाड़, खासकर हिमालयन क्षेत्र की संस्कृति, सभ्यता, लोक, मन, भाव, गीत, चित्र, संगीत, बोली- टोली, जीवन, जंगल और विरासत को मुकम्मल पहचान दी जाए. साथ में लिखित रूप में उनका दस्तावेजीकरण भी किया जाए. ऐसा नहीं कि इससे पहले यह काम किसी ने किया नहीं है. बहुत लोगों ने किया है लेकिन हम उसको डिजिटल फॉर्म में कर रहे हैं ताकि दुनिया इस खिड़की के माध्यम से हमारी थाती को पढे, जाने और समझे. 'हिमांतर' पोर्टल की संकल्पना 2003 की है. व्यवस्थित रूप से 2016 से चल रहा है. जब डिजिटल की बात बहुत कम लोग कह रहे थे तब से 'हिमांतर' डिजिटल है. लगभग दो दशक की डिजिटल यात्रा के बाद पत्रिका की योजना बनाई गई है. इसलिए अलग से ज्यादा, बेहतर करने की कोशिश की गई है.

साहित्य और राजनीति में चल रही इस 'उखेल-पाखेल' के बीच पत्रिका का प्रवेशांक आपकी नजर है. यह प्रवेशांक पहाड़ की मातृ शक्ति को समर्पित है. जितना भी पहाड़ बचा है और जो बचा रहेगा, वह मातृ शक्ति के कारण ही है. पहाड़ इनका और ये पहाड़ की हैं. इसलिए पत्रिका का प्रवेशांक उनको समर्पित है. अब पत्रिका आपकी स्क्रीन पर है. आपसे हम इसकी निर्मम आलोचना एवं सुझावों की अपेक्षा रखते हैं. साथ ही नए कलमकारों को भरोसा दिलाते हैं कि आप रचिए हम बिना किसी गुट के आपको छापेंगे. परन्तु मुफ्त की सलाह लिखने से पहले बहुत पढ़िए....

— प्रकाश उप्रेती

बेटा तेरी माँ नहीं रही...

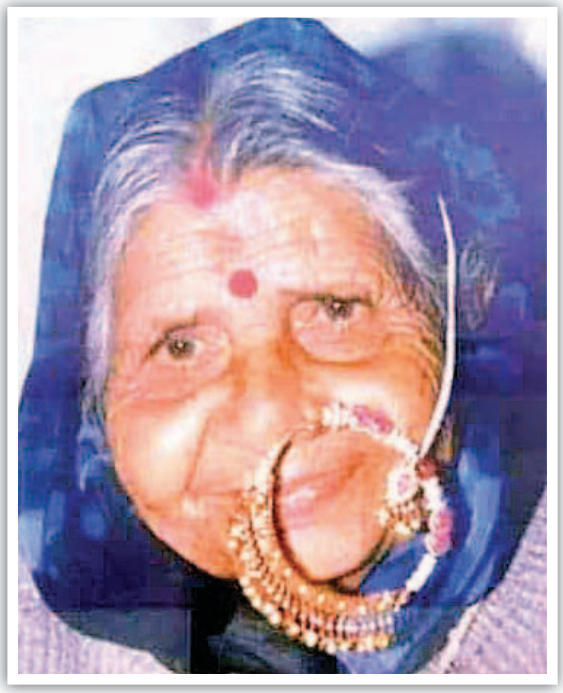

फरवरी, 2007 की 26 तारीख है. सायं के 5.45 बजे हैं. मैं शिक्षा निदेशालय, देहरादून में हूँ. मोबाइल पर अपने गाँव चामी का नाम देखकर तुरन्त बीमार माँ का ध्यान आता है.

डॉ. अरुण कुकसाल
लेखक एवं प्रशिक्षक

हे भगवान! मोबाइल तो ऑन कर लिया पर सुनने के लिए हिम्मत जुटानी पड़ती है. मेरे हैलो... कहने से पहले ही पिताजी की आवाज 'तेरी माँ नहीं रही, बेटा' सुन लेता हूँ. कब-कैसे की बात खत्म करके मैं अपने चारों ओर नजर दौड़ाता हूँ. साथी लोग 01 मार्च, 2007 को भारत सरकार, नई दिल्ली में होने वाली प्रस्तावित बैठक की तैयारी में जुटे हैं. अब क्या करना है, यह सोचने के लिए बगल के खाली कमरे पर पड़ी कुर्सी में बैठ जाता हूँ. यह तो होना ही था. माँ के पास जाना है, सोचते-सोचते महीना बीत गया और आज यह दिन भी आ गया. नौकरी के जंजाल ने घर-परिवार के दायित्वों के प्रति इतना संवेदनहीन बना दिया कि एक दिन भी माँ के लिए गाँव न जा सका. आखिर किसके लिए यह दौड़ा-दौड़ी. मैं अब भी बिल्कुल सामान्य. सब कुछ समझते हुए भी सच को स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ.

'माँ नहीं रही का मतलब समझता है तू,?' मैं अपने आप से मन ही मन पूछता हूँ. फिर रोना शुरू होता है तो मेज पर दोनों हाथों से सिर छुपाकर कई देर तक रोते रहता हूँ.

'सर क्यों रो रहे हो' टीना मोहन की आवाज आती है. वह घबराकर राणा जी, शैलेश, अनुज्ञा, सेमवाल, बहुगुणा जी और पाण्डेय जी को बुला लाती है.

अगली सुबह ऋषिकेश से 4 बजे गाँव की ओर चल पड़े. जीप में परिवार के और लोग भी हैं. वीरान सड़क पर जीप की रफ्तार कुछ ज्यादा है. गाँव पहुंचने की जल्दी हम सबको है, इसलिए गाड़ी की तेज रफ्तार को सभी नजर अंदाज कर रहे हैं. हर कोई खामोश है, पर सभी एक ही दिशा में सोच रहे हैं.

स्मृतियां एकाएक बचपन के चौखट पर पहुंच गई. जन्दरे (अनाज पीसने वाली छोटी चक्की) की आवाज से भोर में नींद टूटी तो सीधे जन्दरा चलाती माँ के घुटनों में फिर से सो गए. जन्दरे की भरभराट के साथ माँ कोई लोकगीत या भजन हल्के से गुनगुनाती. वह गूंज आज भी कानों में तरोताजा है. श्रीकृष्ण कथा में श्रीकृष्ण का पाताल लोक में जाने का प्रसंग जब वह गाकर सुनाती तो गहरी नींद में भी मन हिलोरें लेने लगता. बासुकीनाग देवता की रानियाँ तब रंग-बिरंगी सुन्दर नाचती-गाती मछलियां बन जाती.

चलती गाड़ी की घुर्याट अब बचपन में सुनी जन्दरे की आवाज जैसी लगने लगी है. इसी घुर्याट में बचपन में माँ से सुना उसका पसंदीदा गोपीचंद-भतृहरि की वैरागी धुन में गाया नाथपंथी लोकगीत याद आ रहा है- 'ऋद्धि को सुमिरौं सिद्ध को सुमिरौं, सुमिरौं सारदा माई.....

उसकी सुबह बहुत तड़के हो जाती है. पूरे परिवार में माँ अकेली ही काम करने वाली है, हम बच्चे जो ठहरे. दादा जी बुर्जुग थे पर काम-धंधा समय पर करने वाले हुए. आठ भाई-बहिनों में ऊपर के पाँच (चार भाई और एक दीदी) पिताजी के साथ देश (रुद्रप्रयाग) में पढ़ रहे हैं. गाँव में हम तीन (दो बहिनें एक मैं) माँ के साथ हैं. मुझसे बड़ी बहिन की उम्र स्कूल जाने की है. छोटे भाई-बहिन की देखभाल की जिम्मेदारी के कारण वह स्कूल में विगत दो सालों से भर्ती नहीं हो पाई है.

थोड़ा बड़े हुए तो हम अपनी-अपनी भरसक से माँ के साथ कामों में हाथ बंटाते. स्कूल जाने से पहले गोबर खेत में डाल आए तो वापसी में खेत से लकड़ी-पानी-अनाज ले आए. हमारी पढ़ाई के प्रति वह बहुत सचेत हैं. रसोई में माँ खाना बना रही है तो कोयले से गिनती-पहाड़े पर उसने हमको जुटाया है. मास्टर जी जब छुट्टियों में अपने गाँव से आते-जाते हैं तो रात को हमारे घर ही रुकते हैं. रिश्तेदारी जो ठहरी. स्कूल में होने वाली हमारी हर गतिविधियों की खबर माँ को है.

रुउली में हमारे खेत में गोठ लगी है. शाम का अन्धेरा हो गया है. गोठियों के लिए तम्बाकू की पिण्डी पहुंचानी है. मैं 6-7 साल का छज्जे पर खड़ी माँ की आवाज के सहारे-सहारे लगभग एक किलोमीटर दूर गदेरे के पार रिउली पिण्डी पहुंचा आता हूँ.

माँ मंत्र विद्या में निपुण है, इसीलिए सुबह हो या शाम गाँव के आस-पास की कई महिलाएं उसे घेरे रहती हैं. किसी की गाय दूध नहीं दे रही है, तो किसी का पोता-पोती/नाती-नातिन दूध नहीं पी रहा- रही है. वह पुड़िया की राख को उंगुलियों से छूते हुए मंत्र बुदबुदाती, हम सुनने की कोशिश करते पर नाकाम!. अगले दिन सुनाई देता कि 'हे राजू ब्वे (राजू की माँ), खूब ह्वैग्या नाती या गाय का दूध कुछ बढ़ गया है'. थाड़ (गाँव का सार्वजनिक स्थल) में होली के नाच-गाने हो रहे हैं. बीच थाड़ में होली जली कि गाँव के सयाने पुरुष परे (दूर) हो गए. अब केवल हम बच्चे और महिलाएं ही हैं. थड्यां, चौंफला, खुदेड़ी सामूहिक लोकगीत-नृत्यों का कार्यक्रम देर रात तक चलता है. माँ की उसमें बढ़ -चढ़कर भागीदारी है. शादी-ब्याह में वह सबकी पसंद की मांगलेर (मांगल गीत गाने वाल) है. जड़ी-बूटियों की उसको जबरदस्त पहचान है. एक कुशल वैद्य के रूप में उसकी ख्याति दूर-दूर तक है. गाँव की दो-तीन महिलाओं में वो भी शामिल है, जिन्हें चिट्ठी-पत्री पढ़नी-लिखनी आती है. माँ बताती कि यह कौशल उसने अपने दादा जी से सीखा.

वह एक कुशल दाई भी है. याद आ रहा है हमारे घर के चौक में एक बुजुर्ग अपने सिर की टोपी निकाल माँ से विनती कर रहे हैं कि 'ब्वारी तुमरु ही भरूसु च' (बहू तुम्हारा ही भरोसा है). बात यह है कि उन बुजुर्ग की बहू का प्रसव होने वाला है. उनको डर है कि कहीं दूर गाँव समझ के माँ प्रसव में मदद के लिए आने से मना न कर दे. मुझे अभिमान होता कि मेरी माँ बहुगुणी है. दादा जी माँ से खुश रहते और घर के काम-काज में भरपूर सहयोग देते. माँ शाम को खेत से आई नहीं कि लोटे में चाय भरकर मुझे माँ को देने के लिए थमा देते. सब्जी काटकर और चटनी का सामान माँ के आने से पहले रसोई की देहली पर रख देते.

आम पहाड़ी नौकरी पेशा वाले परिवारों की तरह हम भी कुछ वर्षों के बाद पिताजी के साथ गाँव से बाहर रहने लगे. माँ की

माँ मंत्र विद्या में निपुण है, इसीलिए सुबह हो या शाम गांव के आस-पास की कई महिलाएं उसे घेरे रहती हैं. किसी की गाय दूध नहीं दे रही है, तो किसी का पोता-पोती/नाती-नातिन दूध नहीं पी रहा-रही है. वह पुड़िया की राख को उंगुलियों से छूते हुए मंत्र बुदबुदाती, हम सुनने की कोशिश करते पर नाकाम!. अगले दिन सुनाई देता कि 'हे राजू ब्वे (राजू की माँ), खूब ह्वैग्या नाती या गाय का दूध कुछ बढ़ गया है'.

बीमारी तथा हमारी पढ़ाई-लिखाई मुख्य कारण रहा होगा. गाँव छोड़ने का दिन याद है. गाड़ी में बैठने की खुशी में मेरे और छोटी बहिन के पैर जमीन पर नहीं थे. पर माँ गमगीन थी, घर के दरवाजे पर सांकल चढ़ायी.

(तब घरों पर ताला लगाने का रिवाज नहीं था) तो उसकी रूलाई फूट पड़ी. अपनी नई बाछी को छोड़ कर जाना, मुझे भी रूला गया. घर छूटने का दर्द आज समझ में आ रहा है. रुद्रप्रयाग, जोशीमठ, काशीपुर, टिहरी, अल्मोड़ा, उत्तरकाशी और बड़कोट में सब मिलाकर 14 साल का उसका गाँव से प्रवास रहा. पिताजी के सन् 1980 में सरकारी सेवा से अवकाश के बाद फिर से उसका गाँव का जीवन शुरू हुआ. आज 27 साल के इस आनन्दमयी जीवन को विराम लगा.

चामी की धार 'चमधार' में पहुंचते ही हमारे घर से आने वाले सामूहिक रुदन का स्वर हमें और भी विचलित करते है. घर-गाँव के लोगों से घिरी माँ की निःचेष्ट देह!. मैं चेहरे पर हाथ लगाता हूँ. बर्फ सा ठण्डा, बिल्कुल शान्त कोई शिकन नहीं, झुर्रियां एकदम गायब, सबको निहारती हुयी, बच्चे जैसा चेहरा, इतनी

छोटी क्यों लग रही होगी? मन हुआ गोद में उठा लूं. बंद होंठो में हल्की सी मुस्कराहट मानों कह रही हो, ''मी त चल ग्यूं, खूब राजी खुशी रयां तुम सब'' (मैं तो चली गयी, तुम सब राजी खुशी रहना). हम सब भाई - बहिनें उसे घेरे हुए रोते-रोते मानों कह रहे हों ''खाणू बणौ भौत भूख लग्यीं चा'' (खाना बना बहुत भूख लगी है). गाँव की एक भाभी कहती है ''जी त भग्यान ह्वे गैन. किलै रूणा छों. किलमजात भर्यूं-पूरयों परिवार छः तुम्हरो, खूब सेवा पाणी कार तुमन. कुई कमि नि करी. अर अब ब्वे कैकि राय सदनि'' (सास जी तो भाग्यवान हो गई हैं. क्यों रो रहे हो? भरा -पूरा परिवार है तुम्हारा. तुम सबने उनकी बहुत सेवा की. कोई कमी नहीं की. अब माँ किसकी रही हमेशा?).

कमरे में बढ़ती भीड़ के कारण बाहर आना पड़ा. छज्जे में टीनू खड़ा है. एकटक नीचे चौक में अर्थी बनते हुए देख रहा है, उसके चेहरे पर कई भाव आ-जा रहे हैं. मैं कहता हूँ ''दादी चली गई बेटा,'' पर वह मुझसे ज्यादा समझदार है, ''पता है,'' कह कर अपनी माँ के पास चला जाता है.

घर के चौक में लोगों की बढ़ती आवाजाही में कई बातें सुनाई दे रही है. ''सभि भै-बैण्यां ऐगिन अब क्यांकी देर च. क्वी कष्ट नि ह्वे फूफू तैं प्राण जाण माँ चुपचाप स्वां सरक ग्या. उम्र भी ह्वे ग्यै छें. कु जीणूं च 85 साल अजकाल. जब तलक अपणा हाथ- खुट्यां चलणा छन तब तक जीणूं भलो. वैकां बाद बै मतलब की खेच्यां-तांड़ी ही चा'' (सभी भाई -बहिनें आ गये हैं. अब देर किस बात की. कोई कष्ट नहीं हुआ फूफू को प्राण जाने में. चुपचाप चली गई. उम्र भी हो गई थी. कौन जीवित रह रहा है आजकल 85 साल. जब तक अपने हाथ-पांव चल रहे हैं, तब तक जीना भला. उसके बाद तो बिना बात की खींचा-तानी ही है).

दूसरे कई गाँवों में खबर पहुंचा दी है इसीलिए पिताजी का मन है कि कुछ देर और रुक कर उनको भी आने दें. पिताजी ने बहुत विनीत स्वर में कहा, तो एकाएक मेरा ध्यान उनकी तरफ गया. एकटक पिताजी को देखता हूँ, उनको इतना नम्र, उदास एवं कमजोर मैंने जीवन में पहली बार देखा.

''अपने परिवार के पंडितजी को खबर हुई क्या?'' मैं पूछता हूँ.

''अरे भाई, आज पंडितजी का क्या काम? फिर हम सब पंडित ही तो हैं, निपटा लेंगे,'' बहुत हल्के ढंग से किसी ने जवाब दिया.

''क्यों पूछा होगा?'' मेरे मन में आया.

ठीक दस बजे माँ के पार्थिव शरीर को पिंकू, टुन्नू, थौली और टीनू कन्धा देते हैं. टीनू का कंधा नहीं पहुंचा तो हाथ लगाकर ही सबसे आगे चल रहा है.

''हे जि बड़ा भाग छाया तुमरा नाती-पौथ्यां क कधों म छवां जाणा. कन क्वै रौला हम तुमर बिन. कन रैंदा छाया छज्जा म बैठ्यां तुम'' (बड़े भाग थे तुम्हारे जो नाती - पोतों के कंधों में जा रही हो. कैसे रहेंगे हम तुम्हारे बिना? कैसे बैठे रहते थे तुम छज्जें में?).

महिलाओं का विलाप गाँव से बहुत दूर तक सुनाई देता है. तल्ली चामी की महिलाएं रास्ते में मिलती हैं. तल्ली चामी हमारा ननिहाल यानी माँ का मैत है. नानी के घर के सामने थोड़ा रुकते हैं.

गाँव के नीचे की सड़क से अर्थी को जीप में ले जाना है. मन हुआ कि कहूँ हम कन्धे पर ही ले जा लेंगे, पर आम सहमति के बीच चुप रहना बेहतर समझा. तभी पीछे से आवाज आयी

''डैडबॉडी को छत पर चढ़ाओ.'' मैं चौंका, सांसारिक रिश्ते इतनी जल्दी गल जाते हैं. प्राण गए तो शरीर डैडबॉडी हो गया, उसके साथ सम्बन्धों के सम्बोधन भी खत्म हो गए. संवेदनाओं का सूखापन हमारे जनजीवन में इस कदर पसर गया है, इसका नजदीकी से भान आज हुआ. अधिकांश लोग लकड़ी ले जाने वाली जीपों में ठूंसकर जा रहे हैं. हम कुछ ही लोग पैदल हैं.

चारों तरफ नजर दौड़ाता हूँ. समय पर पानी नहीं बरसा तो खेती-किसानी चौपट, जगह-जगह जानवर खेतों में आराम से

बची-खुची घासनुमा फसल चर रहे हैं. फरवरी का महीना और चारों ओर सूखापन. प्रकृति में भी और लोगों में भी. मोटर सड़क से नीचे का पैदल रास्ता झाड़ियों से रुका हुआ है. आगे जाने वाले लोग पहले झाड़ियों को हटा रहे हैं, तब बड़ी मुश्किल से एक-एक कर लोग चल पा रहे हैं. कभी यह रास्ता दिन-रात लोगों के आवागमन के कारण दुरुस्त रहता था. इसके दोनों ओर खेती-बाड़ी हुआ करती थी. आम के पेड़ इस तरफ बहुत थे. नयार नदी पार करके पाटीसैंण पहुंचने के लिए यही रास्ता सुविधाजनक था. आज हालत यह है कि गाँव के बड़े बुजुर्गों को भी रास्ता ढूंढने में दिक्कत हो रही है. मोटर सड़क आने से इस रास्ते में पैदल चलना बंद हो गया. इस ओर कोई खेती-बाड़ी भी नहीं करता है.

मैं याद करता हूँ, इससे पहले इस घाट पर मई, 1975 में नाना जी के देहान्त पर आया था. चबूतरे के बीच में फैला आम का पेड़ अब विशालकाय हो गया है. पूर्वजों का बनाया यह चबूतरा समय के साथ बूढ़ा नजर आता है. माँ अक्सर बताती थी कि जब यह चबूतरा बन रहा था तो वह चबूतरा बनाने वालों के लिए रोज नाश्ता लेकर आती थी. बौंसाल में जब नयार नदी पर पैदल पुल का निर्माण इलाके के लोग कर रहे थे तब भी काम-काजियों के लिए रोटी लाना उसके जैसी गाँव की तीन -चार बहुओं के जिम्मे रहा. उतार-चढ़ाव का 3 कि.मी. का यह रास्ता नापना तब उनके लिए रोज के काम का एक छोटा सा हिस्सा ही था. आज उसी जगह उसकी जीवन यात्रा को पूर्ण विराम दिया जा रहा है.

चिता पर माँ का शांत शरीर है. चारों तरफ से लकड़ी के सूखे गठ्ठों से वह ढक चुकी है. मैं नजदीक जाकर बस एक बार देखना चाहता हूँ. पर अब भाग्य में नहीं. महेन्द्र, लालू, लाटा, सुनील एवं नकुल चिता बनाने में अनुभवी लोगों की तरह जुटे हैं . बुजुर्गों की टोका-टोकी भी उनके लिए जारी है. किस लकड़ी को चिता के किस तरफ रखना है, इसके लिए तर्क-वितर्क होना जरूरी है. यही लोक विज्ञान है, जो कई पीढ़ियों के अनुभवों से विकसित होता है. विद्या भाई बताते हैं कि

''बारिश के समय तुंगा के पत्तों से पहले चिता की लकड़ियों को ढ़काया-सुखाया जाता है तब फिर कुछ ही देर में धुएं के साथ भक्क (तुरंत) से आग लगती है.''

साफ-सुथरा घाट, नयार का शुद्व पानी, एकान्त जगह, हरिद्वार क्यों ले जाते होंगे? वहां के घाटों की गंदगी तथा पंडों की लूट का ख्याल अचानक आता है.

भाईयों में सबसे छोटा हूँ इसलिए चिता पर आग लगाने का दायित्व मुझे मिला है. चिता की आग एक अलग तरह का भाव पैदा करती है. यह आग अकेलेपन का आभास कराते हुए कुछ देर के लिए आदमी के मन को वैरागी रंग की चादर पहना देती है. माँ की अनगिनत स्मृतियां आँखों में है. अपने को नियंत्रित करने के लिए घाट पर उपस्थित लोगों को गिनता हूँ 60 से ऊपर हैं.

विधानसभा चुनाव के मतगणना का दिन है. इसलिए सारी बहस राजनीति पर केन्द्रित है. किसकी सरकार बनेगी पर सबके अपने-अपने मजबूत दावे हैं. चिता की आग की गर्मी में अब तेजी है . मैं पीठ करके बैठता हूँ तो पीठ पर गजब का सेक लगता है. कपाल क्रिया के बाद बाल काटने की शुरूआत हुई तो सभी नई ब्लेड नकली निकलीं. नकली माल का सबसे बड़ा बाजार पहाड़ ही है. जो चाहो, जैसा चाहो, बेचो कोई पूछने वाला नहीं.

सिर मुंडाने के बाद हम पांचों भाई एक साथ गोल घेरे में बैठते हैं. पिंकू का रोना अभी तक जारी है.मुझे लगता है, हम सब भाई बुजुर्गों की कतार में आ गए हैं. नरेन्द्र भाई के सिर की चोट के निशान गिनता हूँ पूरी दस हैं कब, क्यूं, कैसे हम सबने माँ की मार खाई का खुलासा करके हम मन को हल्का कर रहे हैं.

चिता शांत करके नयार नदी के पार मोटर सड़क के किनारे मैटाकुण्ड के ढाबे में भोजन पर सभी टूट पड़े. मुर्दा घाट से आने पर भूख भी ज्यादा लगती है. चुनाव नतीजे आने लगे हैं. वोटों की गणित के नफे-नुकसान की चर्चा जोरों पर है. घर पहुंचने पर सभी चौक में बैठते हैं.

घर के बच्चे सबके गंजे सिर देखकर हंसते हैं. घर के अन्दर से लगा माँ की आवाज आई, ''कख वटि आणा छवां रै! (कहां से आ रहे हो रै!)''. कैसे कहें कहां गए थे? माँ के कमरे में जमीन पर लेटता हूँ. तभी बाहर जोरों की बारिश आनी शुरू हुई.

गाँव की भाभी कहती है ''जी यीं बरखा माँ सीधा वैतरणी पहुंच ग्यै हौला'' (सास जी इस बारिश में सीधे वैतरणी पहुंच गई होंगी)..... ●

सिर मुंडाने के बाद हम पांचों भाई एक साथ गोल घेरे में बैठते हैं. पिकू का रोना अभी तक जारी है. मुझे लगता है, हम सब भाई बुजुर्गों की कतार में आ गए हैं. नरेन्द्र भाई के सिर की चोट के निशान गिनता हूं पूरी दस हैं कब, क्यूं, कैसे हम सबने मां की मार खाई का खुलासा करके हम मन को हल्का कर रहे हैं.

डॉ. रेखा उप्रेती
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
upretirekha@gmail.com

आब कब आलै ईजा...

"भलि है रै छै आमाऽ...'' गोठ के किवाड़ की चौखट पर आकर खड़ी आमा के पैरों में झुकते हुए हेम ने कहा. ''को छै तु?'' आँखें मिचमिचाते हुए पहचानने की कोशिश की आमा ने...

''आमा मी'' हेम... ''को मी''... ''अरे मैं हेम... तुम्हारा नाती..''

आमा कुछ कहती तभी बाहर घिरे अँधेरे से फिर आवाज आयी-

''नमस्ते अम्मा जी!''

''आब तु कौ छै?''

आमा की खीझती-सी आवाज पर हेम को जोर से हँसी आ गयी. ''भीतर तो आने दे आमा , बताता हूँ. हेम ने आमा को अपने अंकवार में ले गोठ की ओर ठेला.

गोठ में जलते चूल्हे के प्रकाश में हेम ने देखा, तवा चढ़ा हुआ है और एक भदेली में हरी साग..

''अरे, तेरा खाना बन गया आमा... बहुत भूख लगी है.''

''पैली ये बता अधरात में काँ बट आ रहा तू और य लौंड को छू त्येर दगड़?'' आमा ने गोठ के फर्श पर दरी बिछाते हुए कहा... फिर कुछ सोचते हुए बोली '' भीतेर हिटो फिर..''

''न आमा, यहीं बैठेंगे तेरे पास... और हाँ, यह मेरा दोस्त है, पहाड़ देखने आया है मेरे साथ. देवेन्द्र नाम छू यैक...''

''बैठो पै... हाथ-खुट धो लिछा पैली ..'' आमा अपने चौके पर जा बैठी.

''अभी नीचे गाड़ के पानी में खूब छपोड़ा-छपोड़ कर आयें हैं आमा... देवेन्द्र ने पहली बार अस्सल पहाड़ देखा है, पगला रखा है. अभी तक शिमला,मसूरी, नैनीताल को ही पहाड़ समझता रहा. मैंने कहा चल मैं दिखाता हूँ पहाड़ का असली रंग-रूप...''

''तब्ब इतु देर कर दी न'' रोटी बेलती आमा कहने लगी...

देर तक हेम और आमा के बीच पहाड़ी में चलते संवाद देवेन्द्र को समझ नहीं आए पर चूल्हे में जलती लकड़ियों की आँच में तपते आमा के झुर्रियों भरे चेहरे पर एक अजीब-सी दीप्ति देखी देवेन्द्र ने... एक रोटी तवे पर, एक चकले पर और एक चूल्हे के किनारे रखे अंगारों पर फुलाती अम्मा के हाथों की लय-ताल पर रीझ गया वह. कांसे की दो थालियाँ निकाल आमा ने उन पर रोटी और हरा साग परोस दिया. साथ में ठेकी से निकली दही और भुनी हुई लाल-मिर्च.

''मुझे खबर ही नहीं थी आओगे करके, नहीं तो कुछ और पका रखती. अब यही खाओ. उगल का साग है...''

मोटी-सी रोटी और रेशे-रेशे वाली हरी सब्जी... इस 'उगल' को कैसे निगला जाएगा, सोचा देवेन्द्र ने... तब तक आमा ने एक चम्मच घी भर दिया रोटी में...

'' पहाड़ में ऐसा ही भोजन हुआ फिर ..'' पहली बार देवेन्द्र की ओर मुखातिब होकर आमा ने कहा.

''ठीक है आमा, हम तो अभी 'गरमपाणी' से पकौड़े-रायता भसका कर आए हैं....'' हेम ने कहा और रोटियों पर टूट पड़ा. आमा के हाथ की रोटियाँ... जमाना हो गया...

देवेन्द्र ने भी पहला कौर मुँह में डाला तो भूख खुल आई. वाह!! कितना स्वाद! कैसी महक!!

गुदगुदी रोटियाँ... बिलकुल आमा के हाथों जैसी, बाहर से खुरदरी, भीतर से नरम .... फिर कितनी रोटियाँ उड़ा गए दोनों, आमा ही जानती होगी.

बाद में बाहर दोनों को हाथ धुलाने ले गयी आमा... देवेन्द्र ने देखा चारों तरफ घुप्प अँधेरा... आसपास कोई दूसरा घर नहीं... सिर्फ आसमान में चमकते तारे और दूर पहाड़ियों पर उन्हीं की तरह टिमटिमाती रोशनी... धरती और आसमान की सीमा-रेखाएँ आपस में घुलती-सी लगतीं....

''आपको डर नहीं लगता अम्मा?'' अनायास देवेन्द्र के मुँह से निकल गया.

''काऽव लै नहीं खाता मुझे'' आमा की हँसी देर तक देवेन्द्र के कानों में बजती रही.

चाख में बिछे गद्दे पर सोते समय देवेन्द्र ने आखिर पूछ ही लिया-

''हेम तुम्हारे तीन मामा हैं न?''

''हाँ, दो दिल्ली में रहते हैं और एक देहरादून.. क्यों?'' देवेन्द्र के मंतव्य को भाँपते हुए भी पूछ लिया हेम ने...

देवेन्द्र कुछ बोला नहीं तो हेम ने ही बात आगे बढ़ाई...

''तीनों मामा हथेलियों पर रखते हैं आमा को... मामियाँ और बच्चे भी पूरा मान देते हैं.''

''फिर इस वीराने में क्यों रहती है अम्मा... वह भी अकेले..?'' सवाल स्वाभाविक था.

''तुम नहीं समझोगे देवेन्द्र ...'' हेम ने लम्बी साँस ली.

देवेन्द्र ने कुछ समझने की चेष्टा भी नहीं की. आज सुबह से कहाँ-कहाँ भटकाते हुए यहाँ तक पहुँचाया था हेम ने... थकान ने जिज्ञासा को भी सुला दिया अपने साथ...पर हेम नहीं सो पाया. देवेन्द्र के लिए जो वीरान है, आमा की जिंदगी है वह...

कितना आबाद हुआ करता था यह वीराना कभी...

हेम को याद आने लगीं गर्मियों की वे छुट्टियाँ... ईजा और तीनों बहनों के साथ हर साल ननिहाल के इस घर में आता था वह. तब बड्बाज्यू भी थे और तीनों मामियाँ भी. मामा लोग भी अक्सर आ जाया करते छुट्टी लेकर. और-पौर के घरों में भी खूब सारे बच्चे, दीदियाँ, हमउम्र ममेरे-फुफेरे भाई-बहन. आमा-बड्बाज्यू का कारबार जोर-दार ठहरा उन दिनों. गाय-बैल-बछियों से भरा छान, बाड़ों में गलगल, दाड़िम, अखरोट, आड़ू और खुबानी के लदे हुए पेड़, गोठ काठ की संदुकची में दूध-दही, घी के बरतन, भीतर भकार में भरे धान.... आँगन में हर समय कौतिक लगा रहता था. मामियाँ खेत और धुर-धार सम्हालती, आमा रसोई और बच्चे...

साँझ पड़े तक सब घर लौट आते और आँगन में चाय के गिलास के साथ गुड़ की कटक लगाते हुए खूब फसक चलते. हेम की बहनें और मामा की बेटियाँ नाच दिखातीं कभी... 'स्वर्ग तारा, जुन्याली रात, को सुणलो...' गाते हुए. अखोव में धान कूटती दीदियाँ ह! ह! ह! करती हुई ताल देतीं. अँधेरा होने पर छोटे मामा अपना रेडियो छज्जे के नीचे बनी 'सबेली' में रख देते. थोड़ी देर स्यां स्यां करने के बाद रेडियो सीलोन से बजते गीत हवा में तैरने लगते...

आमा-बड्बाज्यु की नोंक-झौंक भी चलती रहती...

बड् बाज्यु उदारमना थे. बहुओं के प्रति अति सहृदय, नाती-पोतों से लेकर अड़ोस-पड़ोस के बच्चों के लिए भी दयालु... आमा के बनाए भोजन में सबका हिस्सा बाँध देते.

''अरे, निमुली की महतारी अभी खेत में ही है. उसके बच्चों को भी खिला देना ... आज हलिया ने बहुत धान माने हैं, इसको दाल-भात खिला दे... भुवन की दुल्हैनी अलग हुई है... उसके लिए भात भिजवा दे ... आज कुकुर को ग्रास नहीं दिया रे.. जा आमा से थोड़ा भात माँग ला..'' उनकी यह फेरहिस्त अंतहीन होती. बड़े तौले में भात पकाने के बाद भी कई बार आमा भूखी

> **धीरे-धीरे मामा के बच्चे बड़े होते गए और पढ़ाई के लिए 'देस' जा कर रहने लगे. मामा लोग तो पहले ही नौकरी के लिए जा चुके थे... फिर एक-एक कर तीनों मामियां भी बच्चों की खातिर देस में जा बसीं. आमा-बड् बाज्य कितनी ही मिन्नतों के बाद भी पितरों की घर-कुड़ी छोड़ने को राजी नहीं हुए.**

ही रह जाती और फिर छज्जे से गलियाती बड्बाज्यु को..

''तु बुड़ कं क दिन आलि अक्कल... घर-कुड़ी बेच हाल ले एक दिन...''

जवाब में बड्बाज्यु आँगन की दीवार पर लधार लगा कर हुक्का गुडगुडाते रहते... आमा की बड़बड़ाहट उसकी गुड़-गुड़ में डूब जाती, उसकी रीस धुँए में घुलती रहती ...हाँ,खुद चाहे कितने ताने सुना दे ' अपने बुड़ज्यू' को आमा ..पर कोई और कुछ कह दे तो उसको भी धुन के रख देती ...

धीरे-धीरे मामा के बच्चे बड़े होते गए और पढ़ाई के लिए 'देस' जा कर रहने लगे. मामा लोग तो पहले ही नौकरी के लिए जा चुके थे... फिर एक-एक कर तीनों मामियां भी बच्चों की खातिर देस में जा बसीं. आमा-बड्बाज्युकितनी ही मिन्नतों के बाद भी पितरों की घर-कुड़ी छोड़ने को राजी नहीं हुए. बड्बाज्युने जब आखिरी साँस ली तब जाके आमा को दिल्ली ले जा सके बड़े मामा. प्रतिवाद नहीं किया आमा ने भी. हाँ, जाते हुए जब कुड़ी में ताला लगने लगा तो दिल रो पड़ा आमा का... नौ बरस की थी जब ब्याह के आई थी इस देहरी में... कभी ताला लगते नहीं देखा था पहले...

मन नहीं लगा आमा का... न दिल्ली न देहरादून... मामा-मामी पूरा ख्याल रखते पर आमा अपने घर को नहीं भूल पायी. एक-दो साल किसी तरह काट कर मचलने लगी...''ईजा, मीं कं घर पूजै दे...''मामा लोग सुनी-अनसुनी करते रहे ...

'' तुझे यहाँ क्या तकलीफ है ईजा...'' बड़े मामा पूछते.

'' के तकलीफ न्हें च्यला... तुमर भल ह जो..''

''फिर घर-घर की रट क्यों लगाती है?''

'' घर बंजर हो रहा है, कुड़ी 'उधर' जाएगी मेरी. कोई दिया जलने वाला भी नहीं.. आमा और उदास हो उठती.

एक बार छोटे मामा को गुस्सा भी आ गया. ''हमारा घर क्या घर नहीं है तेरा..!! गाँव की कुड़ी में क्या रखा है? उन पत्थरों से क्या ममता है इतनी...''

''पाथर नहीं हैं बेटा...पितरों के हाड़ हैं.. म्यार बुड़ा'क भांट छन ऊ भिड़पन.. '' कहते-कहते रो पड़ी आमा.

तब से मंझले मामा खिजाते रहते आमा को, ''बुड़ा'क भांटा'ल के करै'ली ईजा ...ऊपर जाने के दिन हैं अब, वहीं मिल जाएँगे तेरे बुड़ज्यू... फिर झगड़ लेना उनसे...'' रोते-रोते हँस देती आमा...

घर के माया-मोह से आमा की आसक्ति कम करने के लिए बड़े मामा भजनों की कैसेट्स ले आए एक दिन... ''रहना नहीं देस बिराना है...'' अम्मा के मन को भा गया. सुबह-शाम लगाकर सुनने लगी, गुनने लगी... मामा ने राहत की साँस ली. पर मामा नहीं जानते थे कि आमा के लिए 'देस' का एक ही अर्थ है... अपने पहाड़ के अलावा पृथ्वी का हर कोना 'देस' था आमा के लिए और 'बिराना' तो था ही वह...तो विराग के बदले आमा का अनुराग जाग उठा और ''च्यला, मुझे घर पहुँचा दे'' का राग पंचम स्वर में बजने लगा. किसी ने नहीं सुना तो अनशन पर उतर आई आमा... खाना-पीना बंद कर दिया.... हार कर बड़े मामा ने वादा किया- ''अगले महीने भुबन'का की बेटी का ब्याह है. तुझे ले चलूँगा ईजा...''

वादाखिलाफी नहीं की बड़े मामा ने... ले गए आमा को गाँव... एक-आध हफ़्ता रह लेगी अपनी 'कुड़ी' में तो तसल्ली हो जाएगी, फिर लौटा लाउँगा ...यही था मामा के मन में ...

काठगोदाम तक ट्रेन का सफर तो आराम से कट गया आमा का, पर पहाड़ में चढ़ते ही गाड़ी लग जाती थी उसे... थोड़ी देर में ही वाक्क-वाक्क शुरू होने लगी. ज्यादा बिगड़ गयी तबियत तो बेटा घर नहीं पहुँचाएगा ...जानती थी आमा... बड़ी मुश्किल से सीट पर टोप-टाप मारकर पड़ी रही. ''हे भगवती, बस किसी तरह देहरी तक पहुँचा दे... हे इष्ट देवो, कस्सी कै मेरी देइ में पूजै दी हालो...''

"काठगोदाम तक ट्रेन का सफर तो आराम से कट गया आमा का, पर पहाड़ में चढ़ते ही गाड़ी लग जाती थी उसे... थोड़ी देर में ही वाक्क-वाक्क शुरू होने लगी. ज्यादा बिगड़ गयी तबियत तो बेटा घर नहीं पहुँचाएगा ...जानती थी आमा... बड़ी मुश्किल से सीट पर टोप-टाप मारकर पड़ी रही. "हे भगवती, बस किसी तरह देहरी तक पहुँचा दे... हे इष्ट देवो, कस्सी कै मेरी देइ में पूजै दी हालो..."

शादी निभा कर वापसी की तैयारी शुरू की मामा ने... पर आमा भी आन की पक्की निकली. वापस दिल्ली चलने की बात पर हाथ जोड़ दिए मामा के सामने ...

''च्यला मीं त्यार खुंटा पड्नू... मीं क आपणी देई में मरण दे...''

मामा का वश नहीं चला फिर... बीच-बीच में बारी-बारी आते रहते मामा लोग... घर की मरम्मत करवाई, बिजली और पानी का कनेक्शन लगवा दिया. फिर बिरादरी वालों से आमा की हिफाजत की गुजारिश कर लौट जाते ...

इन्हीं सोचों में रात बिता दी हेम ने... फिर थोड़ी-सी आँख लगी ही थी कि मा'ल-भीतेर में गूँजती आमा के शंख-घंट की आवाज ने जगा दिया. ''इतनी ऊर्जा कहाँ से आ जाती है आमा के भीतर..?'' हेम ने सोचा... सुबह नौले में नहा-धोकर छोटी तौली में पानी भर लाती है आमा... मामा की लगवाई टंकी के 'बासी' पानी से न आमा के 'द्याप्त' संतुष्ट होते हैं न आमा की 'तीस' बुझती है...

चाय पिलाते हुए पूछा आमा ने ''कल्यो में क्या बनाऊँ''

'' आमा अभी तो इस शहरी को गाँव-जंगल दिखाने हैं. दिन में चुल्काणि-भात बनाकर रखना.. तीन बजे तक हम निकल जाएँगे.''

''हा'य, एक्क दिन के लिए आया इतना चलकर... द्वी-चार दिन त बैठ...''

''आमा तुझे बताया तो था,मुझे बैंगलोर में नौकरी मिल गयी है. तू चल मेरे साथ... दिल्ली छोड़ दूंगा तुझे ठुल मामा के पास...''

''बिराने देस में क्यूँ रहूँ जाकर ?... अपनी ही देहरी में रहूँगी.''आमा पूरी ठसक के साथ बोली.

फिर धीमे स्वर में कहने लगी-

''तुम बच्चे आओगे कभी.. तो द्वार खुला मिलेगा इजा...नि भयो पै....''

हेम को याद आया, बंगलौर में नौकरी मिलते ही उसने सबसे पहले अपना पासपोर्ट बनवा लिया... एक-दो साल में यू.एस. जाकर बस जाने का इरादा है उसका. मामा के दो बेटे पहले ही बाहर जा चुके हैं. किस बच्चे के लिए द्वार खोले आस में बैठी रहेगी ये बूढ़ी आमा...

''जाकर देविथान में भेंट चढ़ा आना हाँ, और ग्वेलथान में भी हाथ जोड़कर आना च्यला.. भगवान परदेस में सबकी रक्षा करेगा.''

दोपहर तक भटक कर देवेन्द्र और हेम वापस आमा के पास आ गए. नौला से लेकर गधेरे तक, धुर से लेकर धार तक सब दिखाया है हेम ने अपने शहरी दोस्त को. उसकी मुग्ध आँखों से देख रहा था आज वह अपने पहाड़ को... ''जन्नत है यार!''... देवेन्द्र बार-बार कहता...घर पहुँचे तो आमा धुली धोती में लिपटी उनका इंतजार कर रही थी.

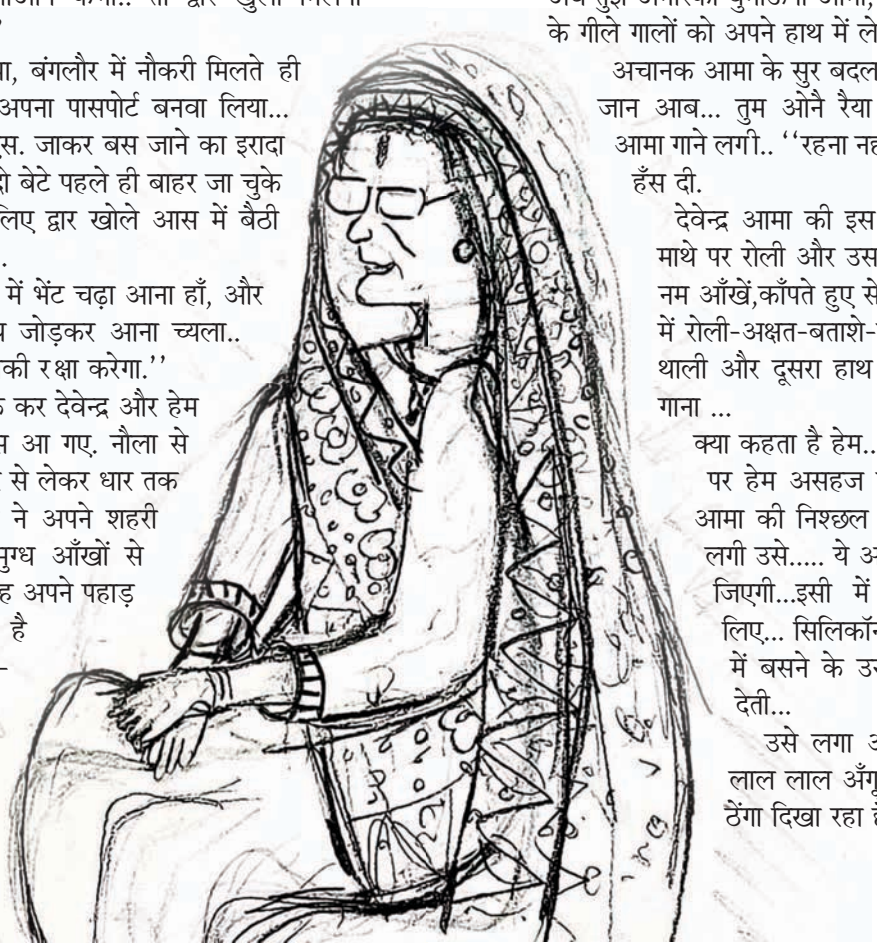

''खाने की भी सुध-बुध नहीं है रे तुमको..''

हेम हाथ-मुँह धोने बाड़े में चला गया. थोड़ी देर में आमा की हांक सुनाई दी..

''हां..हां..हां... भितेर न जाओ..''

वापस आया तो देखा उत्साही देवेन्द्र रसोई में घुसने ही वाला था.. ''अरे रुक देवेन्द्र ... तूने चौका छू दिया तो आमा भात नहीं खाएगी फिर..''

'' तौ रनकर'ल अल्ल खाण-निखाण करि हाल छि म्येर...''आमा हँसने लगी.

दोनों को लकड़ी के चौक में बिठाकर आमा ने भात परोसा. भट की चुल्काणी, पालक का कापा,पिसे नमक वाली ककड़ी... साथ में तिमील के पत्ते पर दाड़िम की खटाई. ''दो चार दिन रुक जाते तो कितना अच्छा लगता च्यला...'' आमा बोलती जा रही थी.

विदा से पहले आमा ने भीतर ले जाकर दोनों को पिठ्याँ लगाया, बताशा खाने को दिया और सिर पर आसीक का फूल रखा.

''आब कब आलै ईजा...'' आवाज भीग गयी थी.

''अब तुझे अमेरिका घुमाऊँगा आमा, तैयार रहना...'' आमा के गीले गालों को अपने हाथ में लेकर हेम ने कहा.

अचानक आमा के सुर बदल गए.''द ईजा मीं कैंनि जान आब... तुम ओनै रैया भेंट'हूँ ...'' कहकर आमा गाने लगी.. ''रहना नहीं देस बिराना...'' और हँस दी.

देवेन्द्र आमा की इस छवि पर रीझ उठा... माथे पर रोली और उसमें अटका डेढ़ अक्षत, नम आँखें,काँपते हुए से हँसते होंठ, एक हाथ में रोली-अक्षत-बताशे-फूल से भरी पूजा की थाली और दूसरा हाथ नचाते हुए आमा का गाना ...

क्या कहता है हेम... 'अस्सल पहाड़...'

पर हेम असहज हो उठा... पहली बार आमा की निश्छल हँसी कुछ-कुछ चुभने लगी उसे..... ये आमा अपनी ही देहरी में जिएगी...इसी में मरने का अभिमान लिए... सिलिकॉन वैली... केलिफोर्नियाँ में बसने के उसके सपने को चुनौती देती...

उसे लगा आमा का पिठ्या लगा लाल लाल अँगूठा उसके ग्रीनकार्डको ठेंगा दिखा रहा है... ●

माँ से वो पहली मुलाकात

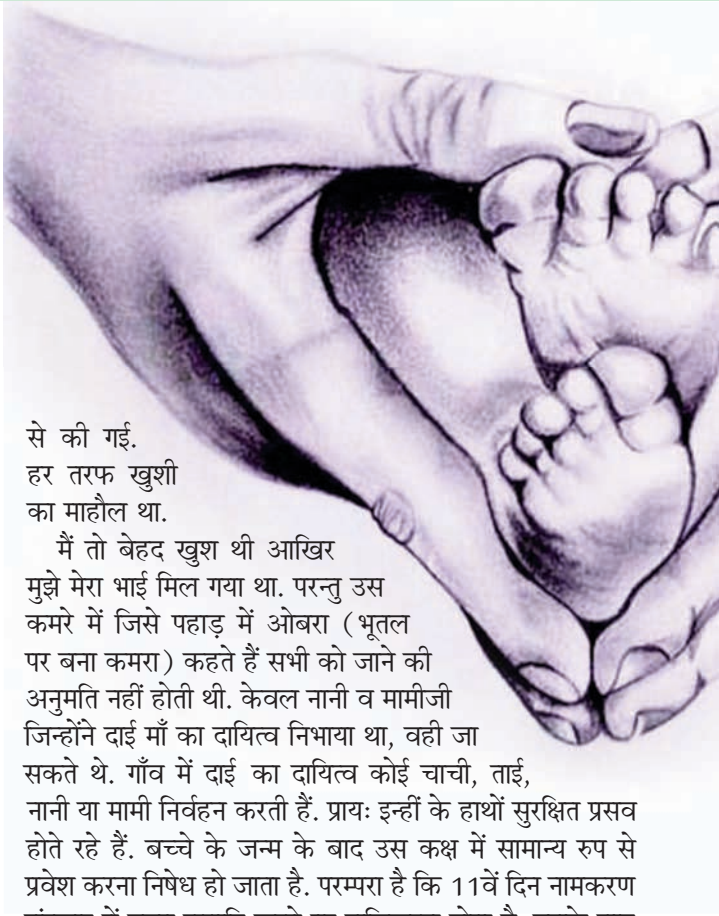

मुझे मेरी अपनी माँ से मुलाकात कराने वाली माँजी थी, यानी नानी. उस बालपन में मुझे सब से प्रिय मेरे पिताजी थे. उनके बगल में बैठकर खाना मुझे अतिप्रिय था. वे अपने हाथों से छोटे-छोटे कौर मुझे खिलाते थे. एक कौर स्वयं खाते एक मुझे खिलाते थे. माँ से तब तक मेरा वैसा परिचय नहीं था. शायद इसका कारण मेरे से पीछे मेरी छोटी बहन का होना था. स्वाभाविक सा होता है कि छोटे बच्चे की तरफ माँ का अधिक ध्यान होता है. मेरे से बड़ी दो बहनें और थीं. इस तरह हम चार बहनें थी. माता जी एवं पिताजी की स्वाभाविक इच्छा थी कि एक पुत्र हो जाता तो परिवार पूर्ण हो जाता. आम जन मानस में यही धारणा भी रहती है.

श्रीमती नीता कुकरेती
सेवानिवृत्त प्रधानाचार्या
एसजीआरआर गर्ल्स इन्टर कॉलेज, देहरादून
neeta.kukreti@gmail.com

बात तब की है जब मैं तीन या चार वर्ष की रही होंगी. हम अपने ननिहाल झाला गाँव जो खिर्सू के निकट है, गए हुए थे. माँ नाना-नानी की इकलौती सन्तान थीं. इसलिए जब भी माँ और हम जाते तो नाना-नानी बहुत खुश हो जाते थे. उस बार तो और खुशी का मौका था. माँ प्रसव के लिए अपने मायके माता-पिता के पास इस आशा से आई थी कि अबकि बार ईश्वर उसे पुत्र ही देंगे. यही सबकी इच्छा भी थी. यहाँ माँ की अच्छे से देख-भाल भी हो सकती थी. धीरे-धीरे वो खुशियों वाला दिन भी आ गया. हमारी खुशियां माँ की कोख में आ गई थीं. हमारी भाई की प्रतीक्षा और माता-पिता की बरसों की पुत्र की इच्छा पूर्ण हो गई थी. नाना-नानी के लिए तो इससे बड़ी और कोई खुशी हो ही नहीं सकती थी. नाना जी ने तत्काल भेली फोड़कर अपनी खुशी प्रकट कर दी. नानी ने दबे स्वर में विरोध किया कि इतनी जल्दबाजी ठीक नहीं. अपनी खुशियों पर अपनी ही नजर लग जाती है. पर नाना जी ने बात को काटते हुए कहा ''शुभ-शुभ बोला करो हमेशा अपशकुनि बातें कहती हो''. नानी यहीं पर चुप हो गई थीं. पाँचवे दिन धूप दिखाने की परम्परा जिसे पहाड़ में पँचैला कहा जाता है, वह भी धूम-धाम से की गई. हर तरफ खुशी का माहौल था.

मैं तो बेहद खुश थी आखिर मुझे मेरा भाई मिल गया था. परन्तु उस कमरे में जिसे पहाड़ में ओबरा (भूतल पर बना कमरा) कहते हैं सभी को जाने की अनुमति नहीं होती थी. केवल नानी व मामीजी जिन्होंने दाई माँ का दायित्व निभाया था, वही जा सकते थे. गाँव में दाई का दायित्व कोई चाची, ताई, नानी या मामी निर्वहन करती हैं. प्रायः इन्हीं के हाथों सुरक्षित प्रसव होते रहे हैं. बच्चे के जन्म के बाद उस कक्ष में सामान्य रुप से प्रवेश करना निषेध हो जाता है. परम्परा है कि 11वें दिन नामकरण संस्कार में हवन इत्यादि करने पर शुद्धिकरण होता है. उसके बाद ही उस कक्ष में सामान्य रुप से प्रवेश की अनुमति मिलती है. बच्चे के जन्म के समय ओबरे की देहली में दरांती/दाथी या दथुड़ि व कंडालि का झाड़ रख देते हैं. ताकि अनिष्टकारी शक्तियां उस कक्ष में प्रवेश न कर सकें.

भाई का नामकरण संस्कार धूमधाम से किया गया. नाना जी ने पूरे गाँव को भोज कराया. नानी जी मना करती रही कि अभी बच्चा छोटा है कुछ समय बाद अच्छे से गाँव को दावत देंगे, पर नाना जी ने तो ठान लिया था सो पूरे गाँव को जिमा दिया. मैं, बहुत खुश थी मन करता था कि भाई को देखती रहूँ. घर में सबका यही हाल था. वह हम सबकी खुशियों का कारण था. शायद किसी ने सच ही कहा है कि कभी-कभी खुशियों को अपनी ही नजर लग जाती है. इन खुशियों के बीच 22वें दिन भय्या की तबियत खराब हुई. नाना जी स्वयं वैद्य थे. कई लोगों को बचा चुके नाना अपने द्योवते को नहीं बचा पाए. माँ पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा. ईश्वर के आगे कोई विरोध तो हो नहीं सकता है. हम अपने दुःख को समेटे कुछ महीनों बाद नरेंद्र नगर वापस आ गए. वह दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने बार-बार आ जाता है. उसके बाद धीरे- धीरे समय बीतने लगा. समय के साथ

हमारा और माँ का दुःख भी कुछ कम होने लगा लेकिन वो टीस तो कभी खत्म होने वाली नहीं थी.

एक दिन नानी ने कहा ''तुम्हें आज तुम्हारे जन्म का किस्सा सुनाती हूँ. तुम से बड़ी दोनों बहनों का जन्म तुम्हारे पैतृक गाँव में हुआ था. उसके बाद तुम्हारे पिताजी दोनों बहनों और माँ को लेकर नरेन्द्र नगर आ गए. कुछ समय पश्चात हमारे लिए चिट्ठी आई कि तुम्हारी माँ गर्भ से हैं. मैं मदद करने के लिए नरेन्द्र नगर आ गई. तुम्हारे माता-पिता को सौ प्रतिशत विश्वास था कि इस बार बेटा ही होगा. नियत समय पर तुम्हारा जन्म हुआ और दाई से तुम्हारी माँ ने पूछा ''क्या हुआ! ''फिर एक और बेटी'' यह सुनते ही तुम्हारे पिता के चेहरे पर चुप्पी पसर गई और माँ तुम्हारी ओर पीठ फेर कर रोने लगीं. तुम्हारी माँ को यह सुनकर बहुत धक्का लगा था कि एक और बेटी हो गई. मैंने लाख समझाया पर तुम्हारी माँ इसे स्वीकार ही नहीं कर पा रही थीं. कुछ देर बाद मैं तुम्हारी माँ के लिए 'हलीरा' बनाकर लाई तो तुम्हारी माँ ने रुधें गले से कहा- 'मुझसे नहीं खाया जाएगा'. मैंने कहा ऐसा मत सोचो कि तुम्हारी बेटी हुई है ये सोचो यही बेटा है. बेटा-बेटी देने वाला ईश्वर है. तुम मुझे देखो तुम्हारे बाद हमें कोई बच्चा ही नहीं हुआ. मैं तो एक और बेटी के लिए भी तरस गई थी. तुम्हारी माँ मेरे इन शब्दों से कुछ चैतन्य सी हो गई. मैंने कहा बच्चे की कुनमुनाने की आवाज नहीं आ रही है, देखो जरा उसे. माँ ने जब तुम्हें देखा तो तुम खून से लथपथ पड़ी थी. तुम्हारी आँखें निस्तेज हो चली थीं. तुम्हारी माँ घबरा गई कहने लगी शायद यह जीवित नहीं है. मैंने तुम्हारी देह को देखा बहुत धीरे-धीरे साँस चल रही थी.

मैं तुम्हारी माँ को डाँटने लगी, तुमने अपनी उपेक्षा से अपनी बेटी को खो दिया. तुम्हारी निस्तेज पड़ती काया को तुम्हारी माँ ने कसकर सीने से लगा लिया और रोते-रोते कहने लगी माँ तो ऐसी नहीं होती जो अपने हाथों से अपनी बेटी को मृत्यु दे देती है. मैंने तुम्हारे पिता को तुरन्त दाई को बुलाने को कहा. वे भी यह सुनकर घबरा गए कि उनकी तीसरी संतान अब बच नहीं पाएगी लेकिन वो सरपट भाग कर थोड़ी दूर रहने वाली दाई को घर से बुला लाये.

दाई ने घबरा कर पूछा क्या हो गया ! मैंने कहा तुम पर एक प्राणी की हत्या का पाप लगने वाला है. इसको देखो, दाई ने देखा तुम्हारी नाल से खून रिस रहा था. शायद उसने नाल को अच्छी तरह से नहीं बाँधा था. दाई ने तुम्हें हाथ से उठाकर नाल को कसकर बाँध दिया और माँ की गोद में डाल कर कहने लगी ''इसका बहुत खून निकल गया है अब यह शायद ही बचे, इसके लिए मैं क्षमा चाहती हूँ''. तुम्हारी माँ तुम्हें सीने से लगाकर रात भर रोती रहीं. तुम्हारी निस्तेज पड़ी देह को चूमते हुए देवी-देवताओं से तुम्हारे जीवन की भीख मांगती रहीं. सुबह जब मैंने तुम्हारी माँ को तुम्हें सीने से लगाए देखा तो पूछा क्या साँस चल रही है? तुम्हारी माँ ने कहा, माँ तुम देखो मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है. मैंने तुम्हारी नाक पर अपनी उंगली रखी तो ऐसा अनुभव हुआ कि बहुत महीन सी साँस चल रही है. फिर तुम्हारे सीने पर कान लगाया तो लगा कहीं दूर से धीमे-धीमे साँस चल रही है.

तुम्हारी जीवटता तुम्हें नाना संकटों से वापस जीवन की ओर लौटा लाई थी. तुम्हारी माँ बहुत खुश थी पर अपने अपराध बोध के तहत वह अपनी खुशी व्यक्त भी नहीं कर पा रही थीं. तुम बहुत कमजोर थी और तुम्हारी देह नीली पड़ गई थी. इसे ठीक होने में अभी समय लगेगा, ऐसा मैंने तुम्हारी माँ से कहा. तुम्हारी माँ तुम्हें सीने से लगाए प्रार्थना करती रहीं. तीसरे दिन जाकर तुम ठीक से रोई तो तुम्हारी माँ ने बलैया लेते हुए कहा अब यह जी जायेगी. उस दिन से तुम्हारी माँ तुम्हें कृष्णकली कहकर पुकारने लगीं. मैंने नानी से कहा, मैंने तो कृष्णकली कभी नहीं सुना.वह तो मेरे रंग के कारण मुझे 'काली' नाम से संबोधित करती हैं !

नानी की बातों से मुझे अपनी माँ से पहली मुलाकात का एहसास हुआ. तब लगा आज तक मैं, माँ को ठीक तरह से पहचान भी नहीं पाई थी. न ही सही तरह से मिल पाई. इस बातचीत के जरिए नानी ने मुझे मेरी माँ से पहली मुलाकात करवा दी. ●

"नानी की बातों से मुझे अपनी माँ से पहली मुलाकात का एहसास हुआ. तब लगा आज तक मैं, माँ को ठीक तरह से पहचान भी नहीं पाई थी. न ही सही तरह से मिल पाई. इस बातचीत के जरिए नानी ने मुझे मेरी माँ से पहली मुलाकात करवा दी."

आमा का लोक और लोक की आमा

डॉ. गिरिजा किशोर पाठक
लेखक एवं भारतीय पुलिस सेवा में वरिष्ठ अधिकारी
drgkpathak@gmail.com

कुमाउनी में एक मुहावरा बड़ा ही प्रचलित है 'बुढ मर, भाग सर' यानी कि जो बुजुर्ग होते हैं वे सभ्यता, सांस्कृतिक परंपराओं के स्तम्भ होते हैं. इन्हीं से अगली पीढ़ी को सभ्यता, संस्कृति परंपराओं का अदृश्य हस्तांतरण होता है. इसी को 'भाग सर' कहते है. परंपरा, संस्कृति, संवेदनशीलता, मानवीय मूल्यों की रक्षा, विनम्रता, त्याग, शील, मर्यादा और मानवीय व्यवहार हर मनुष्य अपने परिवार से सीखता है. इन सबके मिश्रण से ही मनुष्य के अंदर संस्कारों का अंकुरण होता है. मुझे याद है रामकथा सुनाते समय सीता की व्यथा का जो वर्णन आमा ने मेरे मन में भर दिया उसे मैं तुलसी, कंब, वाल्मीकि, फादर कामिल बुल्के की रामकथाओं को पढ़ने के बाद भी नहीं निकाल पाया.

जहां तक मुझे याद है आमा अपने परिवार के सदस्यों के प्रति ही नहीं पूरे गाँव यहां तक की खेती बाड़ी हलिया, ल्वार (लोहार) ओड, टम्टा, खेतों की गुड़ाई-निराई, हुड़की बॉल लगाने वाले सारे ग्रामीण श्रमिकों का बहुत सम्मान करती थी. जब भी फसल का मौसम होता था तो सबके हिस्से का अनाज ही नहीं, दाल, मिर्च, नमक जैसी छोटी-छोटी चीजें भी उनके परिवार के लिए अलग से रखती थी. ढोलियों (मंदिरों में ढोल, दमुआ के साथ मंदिरों में अर्चना का काम करने वाले दास) का भी सम्मान करने का उनका अलग तरीका था. ढोली हमारे गाँव डौणू-दसौली के इर्द-गिर्द के मंदिरों- कोटगाडी, नौलिंग, बंजैडं, मूलनारायण, हाट कालिका, संपूर्ण नागलोक मंदिर समूहों में पूजा अर्चना में ईश्वरीय वाद्य यंत्रों को बजाने का काम करते थे. वे दमुआ ढोल बजाते थे उनका हर सीजन की फसलों में विशेष हिस्सा अलग से रखा जाता था. शायद यह परंपरा रही होगी या उन्होंने इसे शुरू किया, मैं बहुत नहीं जानता.

हर क्षेत्र की अपनी संस्कृति होती है. कुमाऊँ की अपनी लोक संस्कृति है. यहाँ के लोग उत्सवधर्मी हैं. आमा को 16 संस्कारों का पूरा ज्ञान था. मुझे याद है कि बच्चों की अभिरूचि के त्योहारों को मनाने में भी आमा विशेष रूचि लेती थी. खतडुआ, घुघूतिया, फूलदई, जन्यापुन्यू (रक्षाबंधन), भैया दूज को हम सब जी भर कर मनाते थे. पूरे गाँव के बच्चे त्योहारों का इंतजार करते थे. गाँव में किन-किन बच्चों की शादी होनी है. उन्हें परिवार की तरफ से क्या दिया जाना है? कौन-सी विवाहित बच्ची गाँव में आई है. उसे क्या दिया जाना है. किसी गरीब परिवार को अगर भोजन की आवश्यकता हो तो किस तरह से मदद पहुंचानी है. इन दायित्वों के निर्वाहन में उनका एक अद्भुत प्रबंधन होता था, जो सीखने लायक था. उनका हृदय अत्यधिक संवेदनशील था. शायद इसलिये कि उन्होंने गरीबी, भूख के साथ संघर्ष किया था. आज से 40 बरस पहले गाँव का 90% काम वस्तु विनिमय पर चलता था. माड़ा, नाली के हिसाब से काम के बदले अनाज दिया जाता था. उस जमाने में पूरे गाँव की जीवन रेखा खेती ही होती थी. गाँव शत -प्रतिशत आबाद थे.

आमा

बाबू लाहौर से पढ़कर मास्टर हो गये थे. पूरा गाँव उनको पंड़िज्यू कहता था. हमारी तुलनात्मक रूप से आर्थिक स्थिति बेहतर हो गयी थी. एक बार की बात है, शायद कभी गाँव के भौनी जेठ बैज्यू (भवानी दत्त) ने आमा से 100 रुपए उधार लिया होगा और माली हालत के कारण वे लौटा नहीं पाये होंगे. जब मैं स्कूल जाता था तो रास्ते में उनका घर पड़ता था. आमा ने कहा था पैसा मांग ले आना जरूरत है. मैं करीब तीन-चार बार उनके घर 100 रुपए का तगादा करने गया. उन्होंने बार-बार कहा कि अभी नहीं हैं. मेरे साथ में कई विद्यार्थी स्कूल से साथ आते-जाते थे. एक दिन में चिढ़ कर उनके घर से एक तांबे का घड़ा उठाकर ले आया. आमा को बताया कि चार-पांच बार उनसे पैसे मांगे, उन्होंने नहीं दिए तो उनका तांबे का घड़ा उठा कर ले आए हैं. पहली बार मैंने आमा का रौद्र रूप देखा. कड़ी डांट और अत्यधिक नाराजगी शायद एक आध थप्पड़ भी और बोला कि तत्काल जाओ! वह तुमसे कितने बड़े हैं! तुम कैसे उनके घर से तांबे का घड़ा उठा कर ले आए? जाओ तत्काल वहीं घड़ा रख कर आओ. मैं गया घड़ा वहाँ रखकर क्षमा मांग कर घर वापस आ गया. यह घटना मुझे सीख दे गयी कि जीवन में अर्थ नहीं मानवीय मूल्य और संवेदना महत्वपूर्ण है.

आमा कुमाउनी मुहावरों की इनसाइक्लोपीडिया थी. कुछ ही मुहावरे मुझे याद हैं- 'बुड़ मर भाग सर, नु हल्लुवे गौ हल्लू, कुकुरी लाड़, मुसक ज्यान मैं विराऊ खेल कैरा, मैतै भै कोड़े, खाणेकी काव, नओल गोरुक नौ पू घाक, पूसी काव, जै गौ नि जाड़ बाट किले पूछन, गौ हल्लुवे नु हुल्लू, ससुली ब्वारी छै कई, ब्वारिले कुकुर छै कई, कुकुरैले पुछड़ हाल्काइ, सौत्ती ड़ा, स्याप प्वथ पेटै भे कुरमुरैल, घर पिनालु बण पिनालु सौरास गई नौ हाथ पिनाऊ,...

आमा जब दुनियादारी के दुःख नहीं झेल पाती थी तो एक दोहा गुनगुनाती थी मुहावरे की ही तरह-

'घर को दुखिया वन गयो वन में लागो बाघ.
बाघकि डरले रुख गयो रखै लागी आग.
वन बेचारा कया करे करमें लागी आग.'

यानी घर से दुखी होकर आदमी जंगल (वन) चला गया उसके भाग्य से जगंल में नरभक्षी बाघ आ गया. उसकी डर से बेचारा पेड़ (रूख) पर चढ़ गया. दुखिया का दुर्भाग्य देखिये पेड़ में आग लग गयी.

आज शहर में हजारों लोग फुटपाथ पर भूखे सोते हैं. गाँव मे ढोली, हलिया, लोहार, टम्टा, बामड़, खस्सी, जिमदार, कोई भूखा नहीं रहता. वड़ के लिये भले ही लड़ें, पर कठिन समय में सब अपने सुख-दुख बाँटते हैं, कोई आत्महत्या नहीं करता. मिलजुल कर जीने का नाम है गाँव. हमारी विरासत को जहन में डालने में आमा के अलावा ईजा-बाबू, दादा-दीदी, भुला-भुली, काका-काकी, इष्टमित्र हैं, जिन्होंने कुम्हार की तरह इस घड़े को स्वरूप दिया है. उन्हें मैं नमन करता हूं. आमा अब इस लोक में नहीं हैं. उनके पुरूषार्थ को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम भी अपनी पीढ़ी को वो लोक संस्कार और संस्कृति को स्थांतरित कर सकें. यहाँ अमर कौन हैं? ●

इजुली (कुमाउनी कविता)

भास्कर भौर्याल
युवा चित्रकार
+91 97200 19896

उकाव में ले कबै साँस नि चड़ी,
उलार में ले कबै खुटी नि थकी!
गाड़ गधेरों में ले रैड़ी- रैड़ी,
त्वील कबै ले हिटण नि छ्वेड़ी!

जर्ता जस यकारै रिंगणीं रैई ईजू,
चोट खै बेर ले, कबै पीड़ नि जतै!
कोख की पीड़ा त् क्वे की जाणल्?
पर मन की पीड़ा त्वील कबै नि फिड़ै!

बण जंगलों में हिटन - हिटन,
माङ इजरों में रिटन - रिटन,
खुट त्यां खुट कां रैई, ढुङ है गिन्!
हाथ त्यां हाथ कां रैई, डाव् है गिन्!

म्यार लिजी त् 'पैंच' मां घ्यू लूंछै तू!
पर इजू, खुदै मि पर एक 'पैंच' छै तू!
म्यर खातिर द्यबता नौं पर 'उचैंण' धन छै तू!
पर इजू, यां त् खुदै द्यबताक् औतार छै तू!

पहाड़ की पहरू ईजा

ललित फुलारा
चीफ सब-एडिटर
अमर उजाला डिजिटल
lalitfulara15@gmail.com

असल मायने में पहाड़ की पहरू ईजा ही ठहरी. सदियों से ईजाओं ने ही पर्वतीय जनजीवन को संवारा व बचाया ठहरा. उनकी बदौलत ही शिखरों से घिरे हमारे गौं, पुरखों की स्मृतियों की याद लिए खंडहरों के बीच भी खड़े ठहरे. हमारी ईजाएं न होती, तो ये पहाड़ टूट जाते! सूनेपन, उदासी व उजाड़ के दुःख से धराशायी हो जाते! दरक जाती घाटियां और महाप्रलय से पहले ही दूर पर्वतों की तहलटी पर बसे गौं; धरती की कोख में समा जाते. न यादें होती और न ही स्मृतियां! न गीत व कविताएं लिखी जातीं और न ही कहानियां बुनी जातीं.

शुक्रिया कहो... अपनी ईजाओं को जिनकी बदौलत पहाड़ बसे रहे, बने रहे व बचे रहे.

बियावान में अग्नि धधकने के दुःख के बाद भी पेड़-पौधे खुशी-खुशी लहलहाते रहे. लोक और संस्कृति बची रही. रीति-रिवाज और बोली का गुमान रहा. लोकगाथाओं की आस्था में सिर झुके और जागर की रौनक छाई. पहाड़ों का खालीपन भी ईजाओं के पदचाप, कमर की दाथुली, हाथ का कुटऊ, सिर की डलिया और आंचल के स्नेह से भरा रहा.

जब हमारे बुबुओं की पीढ़ी ने पोथी लेकर देहली से बाहर कदम रखा और चौथर पार किया, तो हमारी आमाओं के साथ पहाड़ को खुशहाल 'पहाड़' बनाने वाली हमारी ईजाएं ही थीं. जब हमारे पिताओं ने सरहद लांघीं, तो भी बूढ़ी आखों और झुकी देह के साथ कंधे से कंधा मिलाकर दुःख/सुख और दर्द बांटती हमारी ईजाएं ही रहीं. जब हमने गौं की सड़क छोड़ी, उस वक्त भी बस के पीछे से निहारने वाली दो आंखें और 'जा च्यैला...जल्दी लौटिए' कहने वाली ईजा ही थी. जब हमारे खेत-खलिहान फसलों से लहलहाते थे, तब भी ईजाएं ही रहीं... और जब सुअरों और बंदरों ने हमारे पाख लांघे, तब भी उनको हंकाने के लिए ईजाएं ही रहीं.

जब बेटा गौं छोड़कर अपनी पत्नी को शहर ले जाने के लिए आया, तो सिर पर बोझा लेकर केमु बस पकड़वाने वाली ईजा ही ठहरी. अपनी तकलीफ छुपाते हुए खुशी-खुशी 'जा ब्वारी असोज बंटोने आना जाना है' कहने वाली भी हमारी ईजाए ही हुईं.

हमारी ईजाओं के आंचल से ही पहाड़ लिपटा ठहरा और वो ही पर्वत के अंगोव से चिपकी जुझारू, संघर्षशील व 'पहाड़' जैसी जिजीविषा लिए असल पहरू हुई.

हम जब शब्द बुन रहे थे और दुःख व सुख को भावों में पिरो रहे थे, तब ईजा भौर में चुपचाप उठकर लाठी टेकते हुए दूर छानों को जा रही थी. गोबर बाहर निकाल गोठ में धुंआ लगा रही थी. चमु देवता की केर कर रही थी और बधाड़ पूज रही थी. जब हमारी भैंस ब्यायी, तो ईजा ही ग्यारहवें दिन खरीक में पालथी मारे गोबर के कुंडे बनाकर दूध भरने वाली हुई. जब रों सी को ब्याहे बाईस दिन हो रहे थे, तो ईजा ही छान में पुए, लापसी और खीर पकाकर खुशी मनाते हुए; पशुओं के साथ अनादिकाल के रिश्तों को निभाने वाली ठहरी.

जब हमारे नौले सूख रहे थे और पानी की कमी से स्यारे बंजर हो रहे थे, तब भी आसमां की तरफ प्रार्थना के हाथ

उठाए, नौले की सफाई करने और स्यारों को बंजर होने से बचाने की चाह रखने वाली ईजा ही ठहरी. जब बच्चों की याद हिकोई झिकोड़ देने वाली हुई तो गाय, भैंस और बकरियों को कसकर गले लगाकर अकेले में दो आंसू बहाने वाली ईजा ही हुई.

जब हमारी आमाएं आखिरी सांस गिन रही थी, तो भी ईजा ही थी जो 'ओ ज्यू' कहकर सेवा में जुटी हुई ठहरी। बुबुओं के हाथ में हुक्का भरकर थमाने वाली ईजा ही हुई. प्रसव पीड़ा में भाभियों को हिम्मत बंधाने वाली ईजा ही ठहरी. जब बेटा ब्या करके गाँव गया, बहु को पिछाड़ा पहनाकर नंगे पांव सलामती की दुआ करने के लिए देवी थान भेट चढ़ाने जाने वाली ईजा ही ठहरी. नई-नवेली दुल्हन को गाँव घूमाने वाली, अपने बंजर पाटो और रिश्तेदारी बताने वाली ईजा ही हुई.

जब वैश्विक कोरोना महामारी ने शहरों से लौटाते हुए गाँवों में हमारे कदम टिकाए, तो टुकटुक बच्चों को दूर से निहारती और गुड़ की ढेली के साथ चाय थमाने वाली ईजा ही ठहरी. पोती-पोतियों को देखकर आंखों के आंसू छिपाने वाली ईजा ही ठहरी. बेटे को लौटा देख भीतर की खुशी छिपाकर तमतमाने वाली ईजा ही हुई.

असल शब्दों और अर्थों में पहाड़ ईजा का ही हुआ और ईजा पहाड़ की हुई. पहाड़ के असल दुख, दर्द और संघर्ष को ईजा से बेहतर कोई नहीं समझ सकता एवं ईजा से बेहतर पहाड़ की परिकल्पना किसी के पास नहीं! हम सबकी ईजा एक-सी ही हुई. बाट जोहती, खुशहाली की कामना करती और अपने गोरु, भैंस और बकरियों के साथ ही मरने और बागेश्वर में ही फूंके जाने का ख्वाब देखती हुई. शहर से दूर गाँव भागने के लिए बिलखती और गाँव में पहुंचकर सुंकू से प्याज थेचकर मंडुवे की रोटी और नहो का पानी पीती हुई, पहाड़ों की असली पहरू हमारी ईजाओं को सलाम!!

आखिर में..

हमने जब अपनी ईजाओं को बताया कि पहाड़ को समर्पित पत्रिका 'हिमांतर' निकल रही है और उसका पहला अंक ही ईजा है तो वो हंस दी और आशीर्वाद दिया... बढ़ते रहो निरंतर... ●

ईजा

■ ललित फुलारा
चीफ सब-एडिटर, अमर उजाला डिजिटल

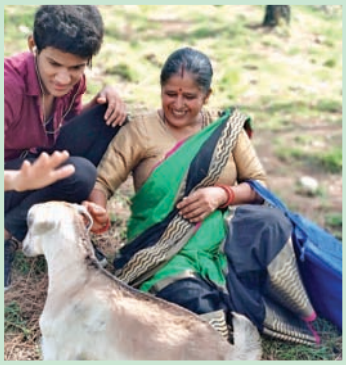

कुछ जगहों पर, कुछ चेहरों को देख
एक चेहरे की याद आ जाती है
आधे सफेद, आधे काले
बालों के ऊपर
धोती का पल्लू डाले
एक सांवली, माथे पर बिंदी लगाए
मांग में सिंदूर सजाए
वो शक्ल
मेरे ज़हन में उभर आती है
मैं खो जाता हूँ, स्मृतियों की गोद में
ईजा की याद आ जाती है.

2

था, जब लेटा करता
आंचल में
ईजा धोती के पल्लू से हवा लगाती
एक फटका इधर, एक फटका उधर
करके
मेरे चेहरे को मक्खियों से बचाती..
याद हैं, मुझे बचपन के वो दिन
जब चूल्हे के पास बैठाकर
ईजा
मलाई से भरा
दूध का गिलास पिलाती
बना-बनाकर रोटी, सबसे पहले मुझे
ही खिलाती..

3

उंगुली पकड़
उबड़-खाबड़ रास्तों से होते हुए
धार पर बने स्कूल में
ईजा ने ही पहली बार पहुंचाया,
डरा, सहमा हुआ
मैं, पाठी पकड़े
ईजा ने स्नेह से गले लगाया..
पाठी पर पहला अक्षर
मेरा हाथ पकड़
ईजा ने ही लिखना सिखाया

4

पत्थरों का चौथर
अमरुद की छाया
ओखली में धान कूटती ईजा
गोठ से
मैं, चाय बना कर लाया
ईजा का चेहरा
खिल उठा
आंखें भर आई
मूसल छोड़, ईजा मेरे समीप आई.
अपनी बाँहों में ईजा ने भर लिया
सिसकियों का स्वर,
वातावरण में घुल-मिल सा गया..
मेरी पहली बार बनाई चाय की
खुशी ईजा ने कितनी बार दोहराई
हर बार उसकी आंखें भर आईं..
ईजा का हृदय प्रफुल्लित हो उठता
जब पग भरता
घास की डलिया सर पर रख,
मैं साथ-साथ चलता
स्नेह भरा ईजा का मुखड़ा
मुड़-मुड़, मुझे देख चढ़ाई चढ़ता..
खेत में काम करती, ईजा की सारी
थकान
यों चुटकी में उतर जाती
असोज के महीने में
जब मेरी बनाई रोटी
छपड़े में होती
आधी कच्ची, आधी पक्की
कुछ फुलकी, कुछ मंडुवे की रोटी
पहला निवाला मेरे मुंह मे डाल
ईजा बड़े चाव से खाती... ●

डॉ. प्रकाश उप्रेती
फ्रीलांस लेखक एवं तदर्थ अध्यापक, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
prakashupretti@gmail.com

ओ परी तू...

दिल्ली आए मुझे 7 महीने हो गए थे। दिन में दिल्ली की चकाचौंध, घर, ईजा, दोस्त, नोह, भैंस सब कुछ भुला देती थी लेकिन जैसे ही दिन छिपता और रात गहराती जाती तो सब याद आने लगता। कभी-कभी आँसू खुद-ब-खुद बहने लगते थे। खासकर दिन छिपने और अँधेरा होने तक का समय तो काट खाता था। दिमाग में ईजा ही रहतीं। अभी ये कर रही होंगी, अब वो, घर तो चित्र बनकर आँखों में घूमने लगता था। कभी-कभी नोह और क्रिकेट खेलते दोस्त याद आ जाते थे। यादों की परिणिति आंसुओं में होती थी। बहुत दिन बीत जाने के बाद एक दिन ईजा को चिट्ठी लिखी।

ईजा नमस्कार,

भगवान की कृपा से हम यहाँ पर कुशल मंगल हैं. आपकी राजी-खुशी के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं. ईजा, दिल्ली बहुत बड़ा शहर है. यहाँ दिन-रात जगमग रहती है. बहुत गाड़ियां भी हैं. घर की तरह कोई 10 बजे का गेट फिर 11 बजे का गेट जैसा नहीं है. जब जाओ तब बस मिल जाती है.

मिंटो रोड वाली बुआजी के घर गया था. वह भी ठीक हैं. घर पर आप सब भी ठीक होंगे. कोई दिल्ली से गाँव आया है क्या? चिट्ठी का जवाब शीघ्र देना. बाकी आपकी चिट्ठी आने पर.

नमस्कार,.

यह चिट्ठी गाँव जा रहे एक चाचा जी के हाथ भेजनी थी. उनसे बात हो गई थी 4 बजे आनंद विहार मिलना तय हुआ था. अगले दिन ईजा के लिए 1 डब्बा मिठाई, 2 नमकीन के पैकेट और 2-3 बड़े बिस्कुट के पैकेट ले लिए थे. इन सब के साथ थैले में चिट्ठी रखकर उसे सुई से सिल दिया था. मैं, ठीक 4 बजे जहाँ 'दिल्ली मांसी' और 'दिल्ली गनाई' खड़ी रहती है, वहाँ पहुँच गया था. चाचा जी तकरीबन 4.45 तक आए और 'दिल्ली मांसी' बस 5 बजे तक आई. तब घर जाने की बहुत भीड़ नहीं थी तो उन्हें आराम से सीट मिल गई. बस के निकलने का समय 6 बजे का था. चाचा ने मेरा सामान अपने बैग में रखा और मुझे जाने को कहा. मेरा मन आनंद विहार से जाने का नहीं कर रहा था. वहाँ एक ओर पहाड़ी गाने बज रहे थे, दूसरी ओर से कानों में अपनी भाषा के शब्द लगातार आ रहे थे. मुझे वो शहर में पहाड़ लग रहा था. बीच-बीच में बस के कंडेक्टर और हॉर्न की आवाज जरूर खलल डाल रहे थे लेकिन वो तब उतना महसूस नहीं हो रहा था. बहुत से अम्मा-बुबू गांव को जा रहे थे. हर कोई एक दूसरे से हड़बड़ाते हुए पूछ रहा था- 'दिल्ली मांसी या गनाई आई कि नहीं?' कई लोगों को तो मैं ही बता चुका था कि ये खड़ी वो आगे खड़ी है. 6 बजने वाले थे, ड्राइवर बस में चढ़ चुका था और हॉर्न देखकर गाड़ी पीछे कर रहा था ताकि निकल सके. चाचा भी अंदर जाकर अपनी सीट पर बैठ गए. बस धीरे-धीरे निकलने लगी. मैं बस को जाते हुए देख रहा था. बस जैसे-जैसे निकलती जाती, मेरी भावनाओं का गुबार भी बढ़ता जाता अंततः बस के गुजरते ही वो आँसू बन छलक ही पड़ा. मैं एक बस के पीछे जाकर थोड़ा रोया, उसके बाद आँसू पोंछे और फिर उस बस की तरफ गया. आगे जाकर देखा तो वह बस दिल्ली- गनाई थी. उसमें वही ड्राइवर और कंडेक्टर थे जिनके साथ मैं तब घर से आया था. उस दिन के मेरे रोने और उदास रहने के कारण कंडेक्टर ने मुझे तुरंत पहचान लिया. देखते ही बोले- 'भुल्ला घर हैं हिटम छै' (भाई घर को चल रहा है?). उनका यह कहना था कि मैं न कहते -कहते पता नहीं कैसे फिर हां कह दिया. मेरे हां कहते ही वो बोले - 'बैठ पे मेरि सीट में बैठ जा बस ऊई खालि छ.' (मेरी सीट पर बैठ जा, बस वही खाली है). मैं झट से बस में चढ़ा और उनकी सीट पर बैठ गया. उधर ड्राइवर भी आया और बस चल दी. तब कुछ समझ नहीं आ रहा था. पता नहीं किस भाव में बस में बैठ गया था. आगे की गाड़ी में चाचा, उनके पास ईजा के लिए चिट्ठी और सामान जा रहा था. पीछे की बस में, मैं जा रहा था. जब तक कंडेक्टर लोगों के टिकट काट रहा था, तब तक मैं खिड़की से बाहर ही देख रहा था. बस दिल्ली के बाद जैसे ही गाजियाबाद की सड़कों में पहुँची तो आसमान में तारे और चांद दिखाई देने लगे. चांद तो बस के

साथ-साथ चल रहा था. मेरी नजर चांद पर थी. कभी चांद बादलों में छिप जाता तो फिर थोड़ी देर में निकल कर गाड़ी के साथ-साथ चल देता था. कंडेक्टर ने मुझे चांद को देखते हुए देखा तो अपना चुपचाप उधर साइड की सीट पर बैठ गया. थोड़ी देर में पुलिस चैकिंग के लिए गाड़ी रुकी तो मेरी नजर कंडेक्टर पर पड़ी. उन्होंने मेरे से टिकट के लिए कहा और हॉफ टिकट काट दिया. मेरी उम्र तो हॉफ टिकट वाली नहीं थी लेकिन हाइट के कारण उन्होंने आते हुए हॉफ टिकट लिया और आज जाते हुए भी. तबतक एक पुलिस वाला टॉर्च लगाकर बस को चैक करके नीचे उतर गया था. उसने कुछ बैग भी टटोले लेकिन मिला कुछ नहीं. तभी बस में से एक आदमी बोला- 'शराबेक बोतल देखणी यूँ' (शराब की बोतल देखते हैं, ये). उसके बाद कंडेक्टर खिड़की की तरफ आ गया और मैं उधर. अब मैं आगे की सड़क को देख रहा था और गाँव में खोया हुआ था. सोचते-सोचते बीच में डर भी लग रहा था कि आगे चाचा जा रहे हैं और मैं पीछे-पीछे. अभी मुझे जाना भी नहीं था. ईजा के लिए कुछ ले भी नहीं जा रहा हूँ. ऐसे बहुत से ख्याल दिमाग में चल रहे थे.

बस कभी बस्तियों से तो कभी अँधेरे जंगलों में से चल रही थी. जितनी तेज बस उससे तेज मेरे ख़्याल. बीच में बस खाने के लिए भी रुकी लेकिन मैं बस में ही रहा. कंडेक्टर ने जरूर मुझे खाने के लिए पूछा लेकिन मैंने मना कर दिया था. खाने के बाद बस फिर 'कान बाई' में रुक गई थी. करीब एक घण्टा वहां बस रुकी रही. पता चला था कि वहाँ कुछ दिन पहले ही एक बस लूटी गई थी इसलिए अब सारी बसों को साथ में छोड़ा जाता था. सबसे आगे और पीछे वाली बस में एक-एक पुलिस वाले बैठकर जाते थे. 2 बजे के आस-पास रामनगर पहुंचते ही पहाड़ों की ठंडी हवा लगने लगी थी और 7 महीने बाद उन बसों को भी देख रहा था जिनमें 'मांसी चौखुटिया' लिखा होता था. वही जानी पहचानी आवाजें जो तकरीबन 7 महीने बाद मैं सुन रहा था. रामनगर में सब बस से उतरे लेकिन मैं खिड़की से नीचे देख रहा था. बस में एक , दो अम्मा थीं और मैं था बाकी सब नीचे उतर गए थे. उस आधी रात में भी रामनगर का बाजार सोया नहीं था. मिठाई, फल से लेकर चूड़ी, चना, मिश्री, गट्टा वाले भी रेडी लेकर बस के इधर-उधर घूम रहे थे. एक चने की रेडी वाला मेरी बस की तरफ आया और बोला- चने लेने हैं, फिर बोला, चने, गट्टा, मिश्री कुछ लेना है. उसने कुछ मिश्री और गट्टे के पैकेट भी चनों के ऊपर रखे थे. मैं भी ईजा के लिए कुछ लेने की सोच ही रहा था. कीमत पूछने के बाद मैंने 10 रुपए का मिश्री का पैकेट और 20 रुपए के चने लिए . वह गट्टे का पैकेट लेने की जिद कर रहा था लेकिन मेरी पॉकिट इसकी इजाजत नहीं दे रही थी. 2 घण्टे वहाँ खड़े रहने के बाद 4 बजे बस आगे के लिए चल दी. हमारी बस के निकलने से पहले 'दिल्ली मांसी' वाली बस जिसमें चाचा बैठे हुए थे मेरे सामने से निकली. मैंने चाचा को देख लिया लेकिन उनकी नजर मुझ पर नहीं पड़ी. चाचा पर नजर जाते ही फिर अपराध बोध होने लगा. ख़्याल चल ही रहे थे और अब बस भी चलने लगी. रामनगर शहर पार करते हुए जिम कॉर्बेट पार्क लगना शुरू हो गया. अब ठंडी हवा, पेड़, जंगल, नदी, गध्यर, हल्के मोड़ धीरे-धीरे दिखने लगे थे. गर्जिया माता मंदिर के बाद तो लगा अब तो अपना पहाड़ आ ही गया. गर्जिया देवी की हमारे यहां बड़ी मान्यता है. हमारे घर की देवी गर्जिया माता ही हैं. इसकी भी एक कहानी है.

खैर बस अब झूलती हुई तेज गति से चल रही थी. मेरी आँखों में हल्की-हल्की नींद आने लगी थी. बीच-बीच में ऊँघने लगता फिर सम्भल कर आँख मलते हुए आगे देखने लग जाता था. बहुत कोशिश करने के बावजूद 'सोराय और घटी' तक पहुंचते-पहुंचते मुझे नींद आ ही गई. तब तक बाहर उजाला भी होने लगा था. दिमाग में चल रहा था कि ईजा उठ गई होंगी लेकिन जब नींद खुली तो भिकियासैंण पहुंच चुका था. जाना-पहचाना बाजार, उसके आगे पतली सड़क, नीचे रामगंगा नदी, अब बस घर आने वाला ही था. 20 मिनट में सनणा आ गया. मुझे पता था कि चाचा केदार उतरेंगे इसलिए मैं सनणा के आगे वाले पुल पर ही उतर गया था. वहाँ से चढाई वाला और सुनसान रास्ता था इसलिये सुबह-सुबह कोई उस रास्ते से नहीं जाता था. मैंने उसी रास्ते से जाने का फैसला किया. पुल पर उतरने के बाद खाली हाथ तो था ही, ऊपर को दौड़ लगा दी. चलते-चलते बिनोली नोह तक पहुंच गया. नोह नीचे था और रास्ता ऊपर को. प्यास भी लग रही थी तो मैंने सोचा नोह से पानी पीकर जाऊं. अब कोई डर नहीं था. सबकुछ अपना जाना-पहचाना था. जैसे ही मैं नोह की तरफ मुड़ने लगा तो देखा कि ईजा नोह से पानी भरी गगरी सर में रखकर ऊपर को ही आ रही थीं. ईजा की नजर मुझ पर पड़ी और मेरी ईजा पर, वो रुकीं और विस्मृत भाव से बोलीं- 'ओ परी तू.... ●

उत्तराखंड हिमालय के जलस्रोतों से अनुप्रेरित वैदिक सभ्यता के आदिस्रोत

डॉ. मोहन चन्द तिवारी
सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर,
रामजस कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
mctiwari1948@gmail.com

'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति
विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा
या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति
यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु
वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥'

–'अभिज्ञानशाकुंतलम्',1.1

महाकवि कालिदास के विश्व प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में आए उपर्युक्त अष्टमूर्ति शिव की वंदना से ही मैं अपनी पर्यावरण के मुख्य तत्त्व जल की चर्चा प्रारम्भ करता हूं.महाकवि कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' के इस नांदी श्लोक में शिव की जिन आठ मूर्तियों की वंदना से अपने नाटक का प्रारम्भ किया है,उनके नाम हैं- जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चंद्रमा, वायु, आकाश और पृथ्वी. इनमें भी सबसे पहली मूर्ति जलरूपा 'आद्यासृष्टि' है. सृष्टिविज्ञान की दृष्टि से भी 'जल' पर्यावरण संतुलन का मुख्य तत्त्व है,क्योंकि सबसे पहले सृष्टि में जल ही विद्यमान था और प्रलय के बाद भी जल ही शेष बचता है.इसलिए जल को सृष्टि का आदिबीज कहा जाता है,उसके बाद ही पृथ्वी, आकाश, वायु आदि का निर्माण हुआ था.

आध्यात्मिक धरातल पर भगवान् शिव की जलरूपी आदिमूर्ति का एक अर्थ आदिशक्ति पार्वती भी है. शाक्त परम्परा मानती है कि जगदम्बा दुर्गा के नौ रूपों में आदिशक्ति का पहला रूप 'शैलपुत्री' पार्वती का ही है,जो कैलास पति शिव की अर्द्धांगिनी भी हैं.यानी सम्पूर्ण संसार की सृष्टि के कर्त्ता-धर्ता शिव और पार्वती हैं, जिनकी कालिदास ने जगत के माता पिता (जगतः पितरौ)के रूप में वंदना की है.मूल रूप से ये दोनों आराध्य देवशक्तियां शिव और पार्वती हिमालयवासी हैं और कैलास पर्वत उनका मुख्य लीलाधाम है. यानी भारतीय परंपरा के अनुसार शिव और पार्वती के संयोग से ही इस सृष्टि के सर्जन,पालन और संहार आदि की जितनी भी लीलाएं रची जाती हैं,उनका केंद्र स्थान हिमालय ही है.

विश्व सभ्यता का इतिहास भी बताता है कि जब से मनुष्य का इस धरती पर पदार्पण हुआ है, जल ही उसके भरण-पोषण और आर्थिक प्रगति का अनिवार्य तत्त्व रहा है. विश्व की तमाम प्राचीन सभ्यताएं चाहे वह नील घाटी की सभ्यता हो या सिन्धु-सरस्वती या गंगा-यमुना की घाटी की सभ्यता,नदियों के तटों पर ही विकसित हुई हैं.

पर विश्व में शिव और शक्ति से अनुप्रेरित भारतीय सभ्यता ही एकमात्र ऐसी सभ्यता है,जिसे 'नदीमातृक' सभ्यता के नाम से जाना जाता है क्योंकि यह सभ्यता नदियों की मातृभाव से आराधना करती है. इसलिए विश्व में भारत की 'मदर इंडिया' के रूप में भी पहचान बनी है.भारत की परम्परा रही है कि चाहे नवरात्र पूजन हो या कोई वैवाहिक अनुष्ठान घर में ही कलश की स्थापना करके उसके जल में समस्त गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी आदि नदियों का आह्वान किया जाता है-

'गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वति.
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु..'

वैदिक संहिताओं के साक्ष्यों से भी ज्ञात होता है कि आदिकाल से ही उत्तराखंड हिमालय धर्म इतिहास और संस्कृति का उद्भव स्थान रहा है.'ऋग्वेद' के एक मन्त्र के अनुसार भारतीय संस्कृति का सर्वप्रथम जन्म हिमालय की गिरि-कन्दराओं और नदियों के संगम तटों पर हुआ-

'उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनां,
धिया विप्रो अजायत.'- ऋग्वेद, 8.6.28

वेदों के भाष्यकार महीधर ने यहां गिरि कन्दराओं का अर्थ पर्वतीय प्रदेश किया है. वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने इन्हीं हिमालय की गिरि कन्दराओं में वैदिक संहिताओं की रचना की और 'आपो देवता' सूक्त के रूप में जल देवता की मातृभाव से स्तुति की.आर्यों के मूल स्थान के प्रश्न को लेकर अंग्रेज साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा यह जो भ्रांत मान्यता स्थापित की गई है कि वैदिक आर्य विदेशी मूल के थे तो इस मान्यता का जल और नदी विषयक वैदिक मन्त्रों के अंतः साक्ष्यों से स्वतः ही खंडन हो जाता है. मैंने अपने शोधग्रन्थ 'अष्टाचक्रा अयोध्या : इतिहास और परम्परा' (उत्तरायण प्रकाशन,दिल्ली,2006) में वैदिक आर्यों के आदि निवास स्थान की समस्या पर पूरे एक अध्याय में विस्तार

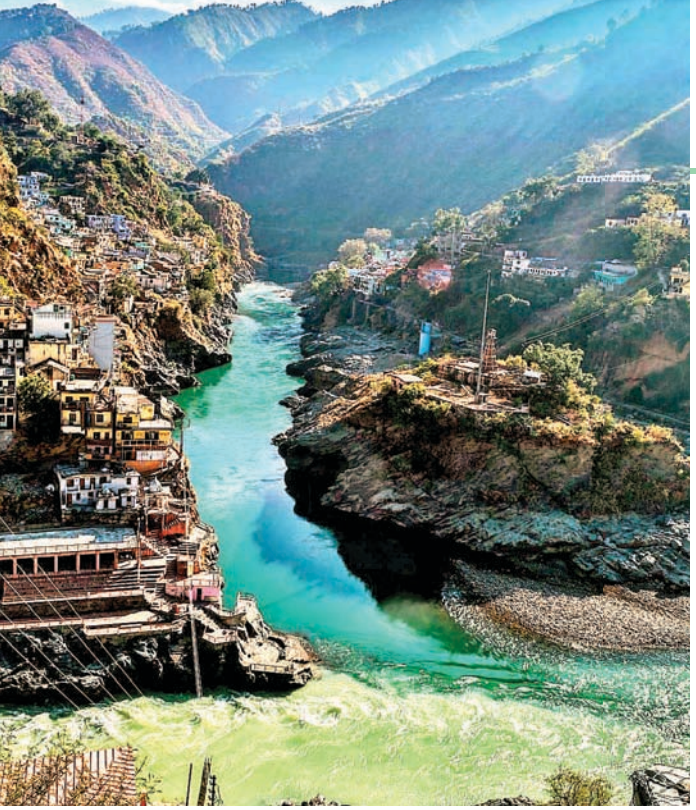

से चर्चा की है और आर्यों के विदेशी मूल के सिद्धांत का खंडन करते हुए यह खुलासा किया है कि वैदिक आर्यों का मूल निवास स्थान उत्तराखंड हिमालय था. यहां जल विषयक चर्चा के सन्दर्भ में इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित करना चाहुंगा कि वेद की ऋचाओं में ऋग्वेद के भारतवंशी आर्यों ने गंगा,यमुना,सरस्वती आदि हिमालय की नदियों की जितनी आत्मीयता और श्रद्धाभाव से स्तुति की है,वैसा विदेशी आक्रमणकारी कभी कर नहीं सकते.यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि आर्य विदेशी मूल के नहीं थे और उत्तराखंड हिमालय की गिरि कन्दराओं में नदीमातृक सभ्यता का विकास करते हुए ही उन्होंने वैदिक मंत्रों की रचना की थी.वैदिक आर्य हिमालय की देवभूमि को अपनी माता मानते थे. ऋग्वेद के मंत्रों में 'पृथिवी माता' का यह विचार बार बार दोहराया गया है-

'बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्' -ऋग्वेद, 1.164.33

अथर्ववेद के 'पृथिवीसूक्त' में भी मन्त्रद्रष्टा ऋषि भूमि को माता तथा स्वयं को उसका पुत्र बताने में गौरव का अनुभव करता है-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' -अथर्ववेद, 12.1.12

उसी प्रकार हिमालय के भूभाग में बहने वाली नदियों के प्रति वैदिक ऋषि के मन में जितनी आत्मीयता और अगाध श्रद्धा है, वह किसी विदेशी आकमणकारी के मनोभावों में नहीं हो सकती-

'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमै सचता परूष्ण्या.
असिवक्न्या मरूद्वृधे वितस्त-
याजीर्कीये श्रणुह्या सुषोमया..' -ऋग्वेद,10.75.5

दरअसल,आर्यों के विदेशी आक्रमणकारी होने की मान्यता व्हीलर आदि ब्रिटिश काल के साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा फैलाई गई एक भ्रांत मान्यता है. इस का प्रयोजन सर्वाधिक प्राचीन आर्य सभ्यता के इतिहास को अवमूल्यित करना है. यदि वास्तव में वैदिक आर्य योरोप,ईरान आदि प्रदेशों से आकर यहां भारत में बसे होते तो उन प्रदेशों का और वहां की नदियों का भी वैदिक संहिताओं में उल्लेख अवश्य मिलता,किन्तु वेदों में ऐसे प्रमाण कहीं नहीं मिलते.वैदिक संहिताओं में तो हिमालय से जन्म लेने वाली गंगा,यमुना सरयू,सरस्वती आदि नदियों की ही मातृभाव से वंदना की गई है. बस यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि वैदिक आर्यों का मूल निवास स्थान मध्य हिमालय, विशेषकर उत्तराखंड हिमालय था.

वैदिक संहिताओं में सरस्वती नदी को सर्वश्रेष्ठ नदी और सर्वश्रेष्ठ देवी के रूप में पूज्य माना गया है-

'अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति.
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥'

-ऋग्वेद,2.41.16

मनुसंहिता से स्पष्ट है कि सरस्वती और दृषद्वती के बीच का भूभाग प्राचीन काल में ब्रह्मावर्त कहलाता था,जिसका वेदों में उल्लेख भारतजनों के निवास स्थान 'ब्रह्मदेश' के रूप में आया है. ऋग्वेद के मंत्रों में भी 'ब्रह्मदेश' और वहां के निवासी 'भारतजनों' की महिमा गाई गई है-

'विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रहमेदं भारतं जनम्'

- ऋग्वेद, 3.53.12

महाभारत (1.90.26) में भी सरस्वती नदी का कई बार उल्लेख मिलता है. अनेक भरतगण के राजाओं ने इसके तट के समीप कई यज्ञ किये थे. वर्तमान सूखी हुई सरस्वती नदी के समान्तर खुदाई में पुरातत्त्वविद बी.बी.लाल को 5500-4000 वर्ष पुराने शहर भी मिले हैं जिनमें कालीबंगा और लोथल जैसे हड़प्पा कालीन शहर भी शामिल हैं. (फ्रन्टियर ऑफ इन्ड्स सिविलाइजेशन)

यहां खुदाई में कई यज्ञकुण्डों के अवशेष भी मिले हैं,जो वैदिक काल और महाभारत काल के यज्ञ सम्बन्धी साहित्यिक साक्ष्यों को ही प्रमाणित करते हैं. पहाड़ पर रहने वाला हर व्यक्ति जानता है कि यह देवनदी सरस्वती बद्रीनाथ के ऊपर बंदरपूंछ ग्लेशियर से निकल कर बद्रीनाथ की व्यास गुफा होते हुए अलकनंदा में मिल जाती है.

सरस्वती नदी के मूल को लेकर इतिहासकारों के मध्य कई तरह की मान्यताएं प्रचलित हैं, किंतु इस नदी का वास्तविक मूल स्रोत आज भी अलकनंदा की सहायक नदी बद्रीनाथ के उत्तर में 'माना' से आने वाली नदी के रूप में देखा जा सकता है. उत्तराखंड हिमालय में प्रवाहित होने वाली इस नदी को आज भी

'सरस्वती' के नाम से ही जाना जाता है.किन्तु विडम्बना यह है कि व्हीलर की इतिहास चेतना से दीक्षित वर्त्तमान इतिहासकार और पुरातत्त्ववेत्ता सरस्वती की खोज की योजनाएं कुरुक्षेत्र आदि मैदानी इलाकों में ही चलाते हैं.उत्तराखंड के सरस्वती नदी और अलकनन्दा के तटों पर पुरातात्त्विक अन्वेषण उनके द्वारा नहीं किए जाते क्योंकि यहां इतिहास के जो नए प्रमाण मिलने की संभावना रहती है,उनसे इन पुरातत्त्ववेत्ताओं को अपने ही पूर्वाग्रहों के खंडन की संभावना प्रतीत होती है.

एक फ्रेंच प्रोटो-हिस्टोरियन माइकल डैनिनो ने अपने शोध 'द लॉस्ट रिवर' में सरस्वती नदी की उत्पत्ति और इसके लुप्त होने के संभावित कारणों की खोज की तो उन्होंने खुलासा किया कि ऋग्वेद के 7वें मंडल की ऋचाओं के अनुसार एक समय पर सरस्वती बहुत बड़ी नदी हुआ करती थी,जो कि पहाड़ों से बहकर नीचे आती थी. डैनिनो कहते हैं कि ऋग्वेद में वर्णित भौगोलिक स्थिति के अनुसार यह नदी यमुना और सतलुज के बीच अपना मार्ग बनाती रही है और लगभग पांच हजार वर्ष पहले सरस्वती के बहाव से ही यमुना और सतलुज नदियों को पानी मिलता था.डैनिनो के अनुसार यह सरस्वती हिमालय ग्लेशियर से बहने वाली नदी है, जिसका उद्गम पश्चिम गढ़वाल के बंदरपूंछ ग्लेशियर से हुआ था. उस समय यमुना भी इसके साथ-साथ बहा करती थी. कुछ दूर तक दोनों नदियां आसपास बहती रहीं और बाद में एक दूसरे से मिल गई.उल्लेखनीय है कि बंदरपूंछ उत्तराखंड राज्य में स्थित पश्चिमी हिमालय की ही एक चोटी का नाम है. इसी बंदरपूंछ की चोटी पर स्थित यमुनोत्री हिमनद से यमुना नदी का भी उद्गम हुआ है.

दरअसल,उत्तराखंड के प्राचीन इतिहास की दृष्टि से सरस्वती का महत्त्व केवल इसकी पवित्रता के धरातल पर ही मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है,अपितु इस कारण से भी आज सरस्वती नदी के महत्त्व को समझने की जरूरत है कि यह वैदिक आर्यों के निवास और उनके धार्मिक अनुष्ठानों की भी सर्व प्रथम पावन भूमि रही है. हम आज भारतीय आर्यो की सभ्यता को सारस्वत सभ्यता का नाम देते हैं, तो उसका मूलाधार भी यही सरस्वती नदी ही है. ऋग्वैदिक साक्ष्यों से इस तथ्य की भलीभांति पुष्टि हो जाती है कि हिमालय की सात नदियों का 'सप्तसैंधव' प्रदेश ही आर्यों का आदि निवास स्थान रहा था.

ऋग्वैदिक आर्य हिमालय के प्रत्येक भूभाग, गिरि कन्दराओं और यहां बहने वाली नदियों और जल सरोवरों से भली भांति परिचित थे. लगभग आठ-दस हजार वर्ष पूर्व वैदिक कालीन आर्य राजाओं और ऋषि मुनियों ने हिमालय की अति दुर्गम पर्वत घाटियों का अन्वेषण कर लिया था और कैलास मानसरोवर तक यात्रा करते हुए उन्होंने हिमालय की पर्वत शृंखलाओं से निकलने वाली सरयू, रामगंगा, कोसी, गगास आदि नदियों के मूलस्त्रोतों की खोज कर ली थी. भगीरथ ने गंगा के उद्गम को ढूँढा, वसिष्ठ ने सरयू की और कौशिक ऋषि ने कोसी की खोज की.वैदिक काल में अयोध्या के सूर्यवंशी चक्रवर्ती राजा मांधाता का साम्राज्य कैलास मानसरोवर तक फैला हुआ था. मान्यता है कि राजा मांधाता ने मानसरोवर झील की खोज की थी और उन्होंने इसी झील के किनारे कई वर्षों तक कठोर तपस्या की. एक दूसरी पौराणिक मान्यता रही है कि राजा मान्धाता ने इन्द्र को परास्त करके अमरावती पर विजय प्राप्त की. इस विजय स्मृति को बनाए रखने के लिये मानसरोवर के किनारे पर स्थित पर्वत का नाम 'गुरला मान्धाता' रखा गया. 'गुरला' यहां पास में स्थित एक पहाड़ी दर्रे का तिब्बती नाम था जो बाद में पर्वत के नाम के साथ जुड़ गया.

'कैलास मानसरोवर' उत्तराखंड हिमालय की भौगोलिक जल संस्कृति के गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित एक अनोखा तीर्थधाम है. यह भारतीय सभ्यता और जलसंस्कृति का भी अद्भुत आदिस्त्रोत है, जिसके साथ शिव और शक्ति के अनेक माहात्म्य जुड़े हैं. यद्यपि आज कैलास मानसरोवर की राजनैतिक सीमाएं चीन के अधिकार क्षेत्र में आ गई हैं. हर वर्ष कैलास मानसरोवर की यात्रा के लिए भारतवासियों को चीन सरकार से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है.परन्तु पिछले आठ दस हजार वर्षों से हिन्दू,जैन,बौद्ध आदि अनेक धर्मों का साझा पुरातन इतिहास इस तीर्थ स्थान से जुड़ा है.भारतीय परंपरा के अनुसार संसार में हिमालय को भी इसलिए देवतात्मा के रूप में पूज्य माना जाता है क्योंकि यहां कैलाश और मानसरोवर जैसा तीर्थस्थान है. कैलाश मानसरोवर को शिव-पार्वती का घर माना जाता है. मानसरोवर संस्कृत के 'मानस' (मस्तिष्क) और 'सरोवर' (झील) शब्द से बना है. मान्यता है कि ब्रह्मा ने अपने मन-मस्तिष्क से मानसरोवर को

बनाया है. पुराणों के अनुसार मानसरोवर झील की उत्पत्ति भगीरथ की तपस्या से भगवान शिव के प्रसन्न होने पर हुई थी. शंकर भगवान द्वारा प्रकट किये गये जल के वेग से जो झील बनी, कालांतर में उसी का नाम 'मानसरोवर' हुआ. सदियों से देव,दानव, योगी, मुनि और सिद्ध महात्मा यहां तपस्या करते आए हैं. इस अलौकिक जगह पर प्रकाश तरंगों और 'ॐ' की ध्वनि तरंगों का अद्भुत समागम होता है जिसके प्रभाव से मन और हृदय दोनों निर्मल हो जाते हैं.स्थान स्थान पर नदी प्रपातों के दूधिया झरने, हरियाली के अद्भुत नजारे तथा नवी ढांग में पर्वत शिखर पर हिम नदियों से बने 'ॐ' पर्वत जैसे प्राकृतिक चमत्कारों ने इस पावन स्थल को शिव और शक्ति का दिव्य लीलाधाम बना दिया है.

जहां तक उत्तराखण्ड हिमालय के सांस्कृतिक और पौराणिक भूगोल का सम्बन्ध है,कुमाऊं मंडल को 'मानसखंड' व गढ़वाल मंडल को 'केदारखंड' भी इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये दोनों क्षेत्र भगवान शिव एवं पार्वती के लीला धाम कैलास मानसरोवर के गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित हैं.

कैलाश मानसरोवर का इतिहास भारत के लोगों के लिए इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके साथ हमारी जलसृष्टि की उत्पत्ति का इतिहास भी जुड़ा है. इस सम्बंध में स्कन्दपुराण के 'मानसखंड' में महर्षि दत्तात्रेय ने इस महातीर्थ कैलास मानसरोवर का वर्णन करते हुए कहा है कि यहां से गंगा,सरयू आदि महानदियां निकलती हैं, विभिन्न नदी, सरोवर, धारे-नौलों की प्राकृतिक जल परम्परा के मूलस्त्रोत भी इसी कैलास मानसरोवर से प्रवाहित होते हैं. यही वह दिव्य स्थान समस्त हिमनद और नदियों का भी मूल उद्गम स्थल है-

'पुण्यं पुण्यजलैरयुक्तं सेवितं शिवकिंकरैः.
यस्मात् पुण्या महानद्यो गंगाद्या नृपसत्तम..
सरव्याद्यास्तथा पुण्याः संभूताः सरितां वराः.
नदानां च नदीनां च यमाद्यं प्रवदन्ति हि..'

-स्कन्दपुराण,मानसखंड,8.50-51

कैलाश पर्वत की चार दिशाओं से एशिया की चार नदियों का उद्गम हुआ है ब्रह्मपुत्र, सिंधु नदी, सतलज व करनाली. इन नदियों से ही गंगा, सरस्वती सहित चीन की अन्य नदियां भी निकली हैं. कैलाश के चारों दिशाओं में विभिन्न जानवरों के मुख दृश्यमान हैं,जिनमें से नदियों का उद्गम होता है, पूर्व में अश्वमुख है,पश्चिम में हाथी का मुख है, उत्तर में सिंह का मुख है,दक्षिण में मोर का मुख है. ●

मैं पहाड़ की स्त्री

डॉ. स्नेह लता नेगी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
negi.sneh@gmail.com

मैं पहाड़ की स्त्री
पहाड़ के दुर्गम जीवन को
खिलखिला कर सहज-सुगम बनाती सबके लिए.
बर्फीली पहाड़ियाँ मेरी प्रेरणा शक्ति है
सुबह उठते ही आंखों के सामने
वह अडिग पहाड़ अपनी तरह
जीवन के झंझावातों से टकराने की सीख दे जाता.
मैं पहाड़ की स्त्री उस बर्फीली पहाड़ी की तरह धवल, स्वच्छ, शांत और निर्मल.
मैं पहाड़ की स्त्री घर और खेत खलिहान के सभी कामों को करने और संभालने की क्षमता रखती.
फिर क्यों खेत खलियानों के पके फल, अनाज को बेचते हुए
मुझे अक्षम घोषित किया जाता है...
तब एकाएक घर का पुरूष स्वामी बन
मेरी मेहनत की फसल बेचने का अधिकार रखता.
साल भर माथे पर पसीना लिए खेतों में खटती मैं दिन रात, लेकिन नोटों की हरियाली लूट लेता घर का पुरुष.
मैं पहाड़ की स्त्री पहाड़ पर ताजी पड़ी बर्फ सी कोमल, लेकिन वक्त के साथ-साथ पिघलते जमते
हिम स्खलन के सपने संजोती
मैं पहाड़ की स्त्री... ●

माँ

अंजना जुयाल
सर्किट हाउस पौडी
anjanajuyal07@gmail.com

माँ दुनिया में परमात्मा का रूप है.
सम्पूर्ण सृष्टि में दूसरा न ऐसा स्वरूप है..
माँ का दूध अमृत के समान है.
माँ का सम्पूर्ण जीवन महान है..
माँ की गोद आलीशान भवन है.
माँ का आँचल विस्तृत गगन है..
माँ नदिया की धारा है. माँ सागर की गहराई है.
माँ बगिया है, उपवन है.
माँ सघन अमराई है..
माँ आंगन है, सीढ़ी है छत है.
माँ घाटी है,मैदान है, पर्वत है..
माँ छाया है, धूप है, फुहार है
माँ नैया है, माँझी है पतवार है..
माँ वेद है, पुराण है, गीता है.
माँ दुर्गा है, यशोदा है, सीता है..
माँ निज जीवन में मरुस्थल की तपती रेती है.
माँ सन्तान के लिये लहलहाती खेती है..
माँ तो माँ है इसका कोई विकल्प नहीं.
माँ की सेवा से बड़ा संसार मे कोई संकल्प नहीं...

ईजा

ईजा मैंके आज नानछनाक बखत याद आगो
तु कतुक भलि छै मैंके आज पत्त चलि गै
त्यर प्यार लै ईजा सार लोक है अलगै छु.
यमै तो सार दुणियक सुख लुकी छु.
मैंकै आज उ बखत-दिन याद आ गई.
त्यार प्यार कैं आज मैं आपण क्वाठौंन ला गईं.
त्यार नड़क धड़क में तो रीस औंछी.
पर त्यार लाड़-प्यार में तो तीनों लोक देखिंछी.
दिन भर डोवी बेर जब घरौं औंछीयां.
भितेर खुट धरतेहि आम-बुबुकि नड़क खांछियां.
पर त्यार दुदेकी घुटुक ल्ही बेर.
तीनै लोकोंक सुख पांछियां.
यक्कै हमै नै भगवान लै त्यार आभारी छन्.
त्यार कोख बटिक जनम् ल्ही बेर.
उ बाड़-बाड़ अत्याचारियोंक् नास करणी छन्.

— कृष्ण तिवारी
krishnatewari8@gmail.com

बच्चों के शब्द रंग

मेरी माँ

माँ का अलावा
होर
कै-सणि रंदि
ब्यट्टे फिकर!
मैं ब्यो बरात्यूं
स्कूल बाजार
जौं,
या
भैर-भितर,
जखि भि जांदू,
माँ का गिच्चा बटि
यनि जरूर ओंदु,
हे मेरा!
आराम से रै,
देखी जे,
भ्वीं ना लमडि।
जब चोट लगदि
त
फूँक मारदि मेरी माँ
गलती ैण पर
लाठू भी उठोंदि माँ।
दाथुडि दगडि कन घास काटदि माँ
हळ पर गळक छूटदि त
कुळन तिरवाळ-धिस्वाळ
खौंण्दी माँ।

— रतन राणा, कक्षा-6

हे माँ त्वेन मैं किलै मार्यूं

हे माँ!
त्वेतै धै लगांदू,
अपड़ा मनै
बात बतौंदु,
त्वेन क्या पाई?
जु मैं कोख मा मार्यूं?
मैंन त्वेतै अपड़ि माँ मांणी,
सैरि पिरथ्वी बे अलग जांणि,
मैं कुछ अलगे करी दिखोंदु
तेरू नौं ऐंच आगास
तलक पौछोंदु,
बिना कसूर त्वैन
मैं मार्यूं,
कोख मा जलम्यूं,
कोख मा दब्यूं
हे माँ
त्वेन मैं किलै मार्यूं...

– लक्ष्मी राणा

महिला दिवस अर पहाड़ की नारी

हमारा गौं की
ब्वारी,
सुबेर उठीक
चुला
आग जगौंदि,
रोटी बणौंदि,
नौन्याळू
स्कूलों तैयार कर्दि
बौंण जांदि
घास ल्यौंदि
बौंण बै ऐ खाणौं पकौंदि
कबारि
बजरी-रेता सार्दि,
त कबारिऽ
ढुंग्गा फौड़दि,
कबारिऽ
अपड़ि गौंडि-भैंसि
घास-पांणी दैंदि
फिर रोटि बणौंदि
नौन्याळू पढौंदि
हमारा गौं की बेटी-ब्वारी
भौत काम कर्दि...

-शिवानी राणा, कक्षा-6

माँ

माँ!

अनिता मैठाणी
कवि एवं साहित्यकार
jagarsociety@gmail.com

माँ!
तुझसे मैं क्या माँगू
तूने मुझे जीवन देकर
ऋणी कर दिया.
अपनी कोख में
नौ महीने का प्रवास दिया,
अपनी देह से
देह दिया.
दुष्कर वेदनाओं से गुजर कर
मुझे जन्म दिया,
स्वयं ताप-आर्द्र सहते हुए
मुझे प्यार से ऊष्मित किया.
आधा पेट रहकर
मुझे तृप्त किया,
लाड दिया,
मेरी हर भूल को क्षमा किया.

माँ!
एक बार और लड़ जाना
घर से, समाज से
जब बेटी की शिक्षा की बात आए.
जब बेटी के हिस्से में दुनियावी बात आए.
बेटियाँ भी समझना चाहती हैं,
दुनिया का भूगोल, इतिहास,
ब्रह्माण्ड, संचार-तकनीकी-आविष्कार.
हर माँ में-ये अलख जगाना
कि-भले वो बेटी को
चूल्हा-चौका, लिहाजदारी कम सिखाये
पर शिक्षा-ज्ञान के तवे पर अवश्य तपाये.

माँ अनंत आकाश सी

ममता गैरोला, युवा लेखिका
gaiorla2010mamta@gmail.com

माँ अनंत आकाश सी,
कल्पनाओं का संसार लिए
इंद्रधनुष सा आँचल उसका,
रंगों का अंबार लिए
अपना-अपना कोना खोजे,
बालपन हम संग लिए
पकड़ हथेली पकडे आँचल,
कदमों को साकार किये.
कच्चे माटी से मूरत जड़ती,
जीवन रचती कुम्हार सी
कभी हाथ के तेज थपेड़े,
कभी सहेजे दोनों हाथ सी
धैर्य और सयंम की मूरत,
सांसों को जोड़ती लड़ी सी
मन के समुद्र मंथन में ,
हौंसलों को बांधती कड़ी-सी.
हर पल हमारी फिक्र में,
खुद से बेफिक्र सी है
मायूसी में मुस्कराहट,
संघर्ष में शक्ति सी है
भूल कर खुद को जो,
अंधरे में भी रोशन दिए सी है
रख दे हाथ जब भी सिर पे,
ईश्वर की इबादत सी है.
मुश्किलों में हमारी ,
दुआओं सी है माँ
दर्द को कम करती,
मरहम सी है माँ
माँ की मौजूदगी में
महकता संसार है
दुआओं में उसकी जन्नत है,
जीवन का आधार है. ●

रवांल्टी कविता बुई

दिनेश रावत
कवि एवं साहित्यकार
rawat.dineshsingh2018@gmail.com

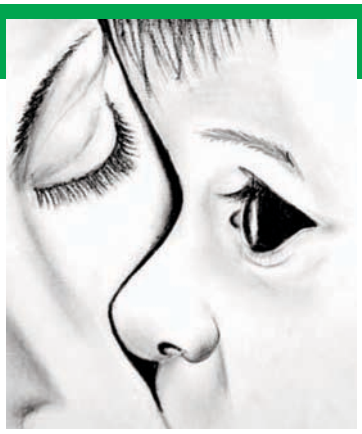

बुई

कन्नी–चौरासी कतरिई झेल बुई
जूठ कौल माऽ पलअ बुई.
दिन भर रऽ धारू अर गाडू
रात छौरों कऽ दगड़ खेल बुई..
गिच्च कु गास बईर गाड़ि किन्न
छौरी–छौरैं माऽ बांटअ बुई.
छौरैं की गेर भरिई देखी किन्न
काइली आपड़ बिसरअ बुई..
खट्ठ–मिट्ठ जू बी दे कोई
फिण्क बादी ल्याऽ बुई.
दारक आई किन्न सब्बू छौरैं क
बांटऽ आपु लगा बुई..
नौ–नौ मईनु गेरी फुण्ड धरिई किन्न
काम घर–बण क सब निपटा बुई.
भूख, तीस जऽ बेग्या बड़ऽ
तअ चोपड़ू माटू चबाऽ बुई..
औलादी कु मुख देखण्क बान
डाऽ–पीड़ सारी बिसरऽ बुई.
सुइल्या बगति बी घर–बण कऽ
काम ऐखुल्या निपटा बुई..
कोव कऽ बाव दूध पिलाण्ली
एकऽ सांस्या दारक आ बुई.
उमर भर क कन्नी–चौराई किन्न
पइलिई बुडेण लगी जा बुई..
आपड़ु कऽ हण–खाण क दिन
देखी, भोगी बी नाऽ पांदी बुई.
बाव छौरों कऽ जवान हण ताईं
दुनिया छोड़ी नई जाऽ बुई... ●

माँ

कष्ट कितने सहती है माँ
जूठन खाकर पलती है माँ.
दिनभर रहती धार और गाड़ों में
रात बच्चों संग खेलती है माँ..
मुँह का निवाला बाहर निकालकर
हिस्से बच्चों के लगाती है माँ.
बच्चों का पेट भरा देखकर
भूख अपनी भूल जाती है माँ..
खट्टा-मिट्ठा जो भी देता कोई
पल्लु में बांध कर लाती माँ.
घर आ करके सभी बच्चों के
हिस्से स्वयं लगाती है माँ..
नौ-नौ माह तक पेट मे लेकर
काम-काज सारे निपटाती माँ.
भूख, प्यास जब अति हो जाती
चिकनी मिट्टी चबाती माँ..
सन्तान का मुँह देखने के खातिर
दर्द सारे भूल जाती है माँ.
गर्भावस्था में भी घर और वन के
काम सारे निपटाती माँ..
दूध मुहें बच्चे को दूध पिलाने
खेतों से दौड़-दौड़कर आती माँ.
अकेलेपन की परेशानी सहकर
वक्त से पहले बुढ़ी हो जाती माँ..
बच्चों के खाने–खेलने के दिन
देख, भोग भी नहीं पाती है माँ.
नादान बच्चों के जवान होने तक
दुनिया ही छोड़ जाती है माँ... ●

ईजा

सोनू उप्रेती 'साँची'
अध्यापिका, रा.प्रा. वि. धसपड़
धौलादेवी, अल्मोड़ा
upretis449@gmail.com

ईजा खड़ी रहती है
पहाड़ सी
उन पहाड़ों में
जहाँ उसका दिल
बसता है.
उसके अपने
उसकी बाखली
उसकी देहली
उसके द्वार
गेरू से लिपा हुवा चाख
मन्दिर की सजी बेदी
जिसमें बिस्वार से
कलाकारी
देहली पे बसन्धारे
मन पे खुशी से
जी उठती है ईजा
उनके ही साथ
हर बात हर रात,
गोठ में गौरा,बिनुवा
और भी जानवरों
की 'अम्मा' की आवाज
ईजा को जीने की
वजह देती, वो हर सुबह
सगड़ पे रखी केतली
उसपे उबलती चाय
मिसरी, गुड़ के
कटक के साथ
अपनी घस्यारि दोस्तों
संग भीड़े पे बैठ
अलाणा -फलाणा के किस्से
ठहाकों पे बातें, पूरी बाखली पे
हल्ला-गुल्ला,
डलिया
संग मोव
खेतों पे डालना,
लौटते समय
हरी-हरी घास
गौरा बिनुवा के लिए ,
वो हर सुबह साँझ
गौरा का दूध दुहना
एक थन गौरा के
बोहड़े के लिए
भी छोड़ देना,
ईजा का ममत्व
साफ झलक जाता,
चूल्हे पे भड्डू का साग
मडुए की रोटी घी संग
सुकूँ की नींद सो जाना,
अगली सुबह
शकुनाखर गीत
रत्याली जो करनी है
ठुल ज्याठजु के वहाँ,
ईजा की जिन्दगी
इन्हीं पे बसती,
च्यला -ब्वारि नाती पोथे तो
सब भाभर हुए,
लड़के की
रोज एक फोन की घण्टी
ईजा को, तसल्ली देती,
सब सकुशल हैं,
खड़ी है ईजा आज भी
हिमाल सी
अपने गाँव में,
अपनी थाती बचाने को
अपनी बिरादरी में
अपनी बाखली को
अन्त तक
अपने काम-काज से
सँवारने को, हाँ सच ही तो है
ईजा आज भी खड़ी है
उन पहाड़ों में
बन पहाड़ सी... ●

पहाड़ की औरत

डॉ. कुसुम जोशी, कवि एवं साहित्यकार
kusumjoshi1963@gmail.com

ज्यादा कुछ नहीं चाहा
घर की रीढ़ सी उस औरत ने
पर चाहा-
पहाड़ों से चढ़ते उतरते
जब घास,लकड़ी के गठ्ठर के बोझ तले दबी हो
तो उसके हाथों में एक मजबूत लकड़ी
जो उसे बचा ले लड़खड़ाने से,
पहाड़ों के जंगल हमेशा भरे रहें
लकड़ी और घास से,
सर्द मौसम पहाड़ों को
हर बरस ढक दे बर्फ से,
और मौसम के बदलते
लहलहा उठें खेत,
हमेशा स्वस्थ रहें
उसके गोठ में दुधारु पशु,
और गाँव का हरकारा
समय में
पहुंचाता रहे लाम से आने वाली कुशल की पाती
और मनिआर्डर,
स्कूल जाते बच्चे लौटें मुस्कान बिखेरे,
और जल्दी निकल जाएं इस गाँव से
पढ़ने या कमाने के बहाने,
पर आते रहें हर साल घर
अपने
पिता की तरह. ●

ईजा और पहाड़

मीना पाण्डेय
कवि एवं साहित्यकार
srujanse.patrika@gmail.com

कई बार हिली पर नहीं टूटी ईजा
आँचल में छिपाती रही वक्त-बेवक्त के आँसू
भीतर से दरक रहा पहाड़
बाहर से अड़िग ही बना रहा
तमाम विवशताओं के साथ
मैं जितना दूर आई
उतने पास आते गए
ईजा और पहाड़.

पुरानी धोती के टुकड़ों में बंधे
गहत-भट्ट जितनी
बंटती रही ईजा
जैसे बंटती है धूप
बंटती है बरसात
बंटता है पहाड़
अपने नौनिहालों के बीच
शहर की किसी 'पहाड़ी गली' में
छौंक, अन्वार और बोली में लटक भर
बचे रह जाते हैं
ईजा और पहाड़.

कमर में दरांती खौंस
पहाड़ से बतियाति ईजा की उम्र
उसकी हरिति देह से
घास लपकते गुजर गई
पहाड़ दोहराता रहा
उसकी न्यौली
देता रहा धीरज
अलग-अलग होकर भी
नियती में एक से रहे
ईजा और पहाड़.

खाली पड़े मकानों की

गेरुई दीवार पर
बिस्वार सी उतरती ईजा
'धैं अब' 'धैं अब' कहती
आजीवन ढ़ोती रही
दर्द का पहाड़
पहाड़, खड़े रहने की नियति लिए
बंधाता रहा ढ़ांढस

मरते नहीं
चाल, ढ़ाल, निश्वास में
करवट बदलते रहते हैं
हमारे भीतर-बाहर
ईजा और पहाड़.

www.khatokitaabat.com
खतोकिताबत
साहित्य को समर्पित एक प्रयास
खतों के जरिए करिए
भावनाओं का इजहार
digitalkhatokitabat@gmail.com
फेसबुक : facebook.com/Khatokitabat
यूट्यूब : khatokitabat Digital

ईजा के बिना सूना घर

मेरे लिए ईजा से प्यारा कोई शब्द नहीं है. ईजा सुनते ही मैं अपने बचपन में लौट जाता हूँ. ईजा के आंचल की छांव में खेलने लगता हूँ. ईजा की मार और अपनी शैतानियों में खो जाता हूँ. धन-दौलत, सौहरत और प्रसिद्धी हर एक चीज ईजा के प्यार के आगे फीकी है. उसका ममत्व हम सबको निस्वार्थ भाव से मिलता है. ईजा ही है, जिसका कलेजा हर वक्त अपने बच्चों के लिए धड़कता रहता है. बच्चों की फिक्र ईजा को हर वक्त रहती है, चाहे वे कितनी ही बड़े क्यों न हो जाए? मुझे इस बात से बेहद दुःख पहुंचता है कि उम्र के एक पड़ाव के बाद बच्चे अपनी दुनिया में रमकर ईजा को भूलने लगते हैं. उनके पास ईजा के लिए वक्त ही नहीं रहता या फिर वो ईजा से दूर होते चले जाते हैं.

विवेक जोशी
वाइस प्रेसिडेंट,
निर्मल बंग ग्रुप
vivjoshi.84@gmail.com

मैं ऐसे तमाम लोगों से कहना चाहूंगा कि हर स्थिति और परिस्थिति में ईजा को अपने साथ रखें. ईजा की सेवा करें. क्योंकि ईजा की सेवा से बड़ा न कोई भगवान है और न ही कोई धाम. न कोई शांति और न ही कोई सुख!

मैंने जब सुना कि 'हिमांतर' डिजिटल के बाद अब ई-पत्रिका के रूप में आ रहा है और उसका पहला ही अंक 'ईजा' है, तो मेरे आंखों के आगे ईजा के साथ बिताए सारे पल जीवंत हो उठे. मुझे अचानक से ईजा की याद सताने लगी. लॉकडाउन की घोषणा से पहले ही मैं ईजा एवं अपनी पत्नी को हल्द्वानी छोड़ आया था, उसी के कुछ दिनों बाद मुझे इस पत्रिका के निकलने की सूचना मिली, तो अचानक से घर सूना-सा लगने लगा. ईजा के जल्द से नोएडा लौटने की छटपटाहट भीतर कुलबुलाने लगी. ईजा इनदिनों बहन के घर है और जल्द ही मैं उसे वापस लाने जा रहा हूँ.

मेरा बचपन लोहाघाट में बिता. दसवीं तक की पढ़ाई भी वहीं हुई. बारहवीं में पिथौरागढ़ आ गया और उसके बाद आगे की पढ़ाई नैनीताल और दिल्ली में हुई. जब पढ़ने के लिए घर से बाहर निकला तो ईजा की याद बहुत सताती रही. साल 2012 में पिता के देहांत होने के बाद मैं ईजा को अपने साथ ही ले आया और तब से एक पल के लिए भी ईजा आंखों से दूर होती है, तो भीतर की बैचेनी बढ़ने लगती है. पिता के देहांत के वक्त ही मैंने यह सोच लिया था कि अब ईजा मेरे ही साथ रहेगी और मैं हमेशा ईजा के साथ रहूँगा. इन दिनों अपने प्लैट में अकेला हूँ, तो इस बात का अहसास हो रहा है कि ईजा के बिना घर बस ईट-पत्थर है. ●

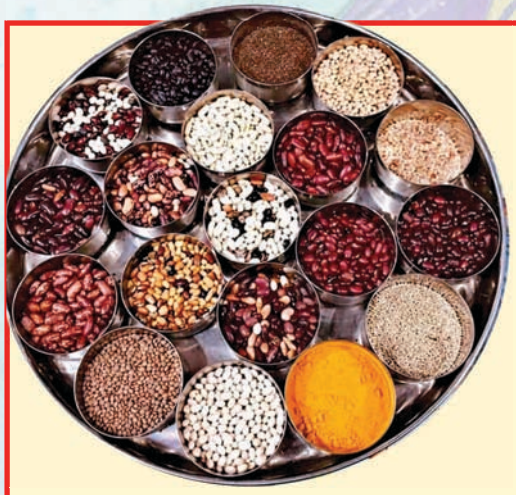

रुद्रा एग्रो स्वायत्त सहकारिता

ग्राम-देवलसारी, नौगाँव,
उत्तरकाशी (उत्तराखंड)

सभी प्रकार के पहाड़ी उत्पाद सीजन के अनुसार उपलब्ध रहते हैं

श्रीमती लता नौटियाल
सीईओ
रुद्रा एग्रो स्वायत्त सहकारिता

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें
8958083073
9456126214

(त्रैमासिक) ई-पत्रिका
हिमांतर
हिमालयी सरोकारों के लिए समर्पित

www.himantar.com

पत्रिका में प्रकाशित किसी भी आलेख से आपकी सहमति और असहमति हो सकती है. आप इसे हमें ई-मेल भेज कर दर्ज कर सकते हैं. साथ ही आप रचनात्मक सहयोग भी दे सकते हैं.

- आलेख यूनिकोड में टाइप होना चाहिए .
- आलेख निम्न ईमेल आईडी पर भेज सकते हैं .
- साहित्यिक और गैर साहित्यिक किसी भी विधा में लिख सकते हैं.
- पत्रिका का अंक प्रकाशित होने के बाद अगले अंक के लिए 25 दिनों के भीतर आलेख भेज सकते हैं.
- पहाड़ से संबंधित शोध पूर्ण रिपोर्ट भी भेज सकते हैं.
- आलेख के साथ अपनी वास्तविक फोटो और संक्षिप्त परिचय जरुर प्रेषित करें.
- आलेख की स्वीकृति और अस्वीकृति की सूचना ईमेल के जरिए दे दी जाएगी.
- आलेख को पत्रिका में स्थान देना है या नहीं इसका निर्णय संपादन समिति का होगा.

himantar9@gmail.com www.himantar.com YouTube Himantar1 www.facebook.com/Himantar9 @Himantar1 +91-8860999449

आपके बीच जल्द नए अंक के साथ हाजिर होंगे... —टीम हिमांतर